महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६१ अंक : ०४

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: माघ शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

फरवरी द्वितीय २०१९

अनुक्रम

०१. त्रैतवाद और अद्वैतवाद : विज्ञान...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-२४	डॉ. धर्मवीर	१०
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१३
०४. वेद ही क्यों?	पं. क्षितीश कुमार	२०
०५. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२६
०६. शङ्का समाधान- ४३	डॉ. वेदपाल	२८
०७. हरफूल कैसे महात्मा एवं भक्त...	कन्हैयालाल आर्य	३०
०८. परोपकारिणी सभा का निर्माण	प्रभाकर	३६
०९. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

त्रैतवाद और अद्वैतवाद : विज्ञान की कसौटी पर (महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों के सन्दर्भ में)

वेदों के सत्यार्थ के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा और तदनुसार आचरण के छूट जाने के कारण एक ओर वेद विरोधी नास्तिक मत '**चार्वाक**' का जन्म हुआ तो दूसरी ओर पौराणिक प्रवृत्तियों ने जन्म लिया, जो पनपते-पनपते एक पृथक् 'पौराणिकवाद' का रूप ले गई। फिर पौराणिकतावाद में पनपी व्यक्तिगत और सामाजिक विकृतियों तथा अबौद्धिकता के प्रतिक्रियास्वरूप नये नास्तिक मत 'जैन' और 'बौद्ध' का प्रवर्तन हुआ। साथ ही गुरुडमवाद के कारण अनेक आस्तिक मतों शैव, वैष्णव, वाममार्ग, शाक्त, तान्त्रिक, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि मतवादों का प्रारम्भ हुआ और यह क्रम आज भी जारी है।

महर्षि दयानन्द जब कार्यक्षेत्र में आये तब दार्शनिक क्षेत्र में आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठापित '**अद्वैतवाद**' का बोलबाला था। इस वाद को आचार्य गौड़पाद ने आविष्कृत किया था। इसका अर्थ है-'वह **वाद**=मत, जिसमें **अ+द्वैत**=नहीं मानी जाती एक से अधिक दो या अधिक पदार्थों की नित्य सत्ता।' इस वाद का सिद्धान्त वाक्य है-

''**ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।**''

(ब्रह्मनामावली, २० श्लोक)

अर्थात्- 'केवल ब्रह्म का अस्तित्व और नित्यत्व सत्य है, अन्य किसी पदार्थ का नहीं। जीव की कोई पृथक् नित्य स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, वह ब्रह्म का ही अंश-मात्र है। जगत् मिथ्या है, वह माया है, भ्रम मात्र है अर्थात् प्रकृति सत्य, अनादि, अविनाशी नहीं है। उसकी स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में सत्ता नहीं है।'

यद्यपि शंकराचार्य वेदों और वैदिक मत के पक्षधर थे, किन्तु उन्होंने वेद-विरुद्ध अद्वैतवाद को स्वीकार किया। तर्कों, आठ प्रमाणों और वेदोक्त वचनों की कसौटी पर खरा न उतरने के बाद भी आदि शंकराचार्य अपनी विद्वत्ता और शाब्दिक सामर्थ्य के बल पर मध्यकाल में इस वाद को स्थापित करने में सफल रहे। अपने ग्रन्थों, मुख्यतः ब्रह्मसूत्रों की स्वतन्त्र व्याख्या (शारीरिक मीमांसा भाष्य) के माध्यम से इस वाद को दृढ़मूल किया। उसके पश्चात् उनके मतानुयायी शंकराचार्यों और विद्वानों ने इस वाद का खूब प्रचार-प्रसार किया और आज भी वे केवल अपने मताग्रह के कारण ही कर रहे हैं, जबकि वेदों के आधार पर यह प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता। पौराणिकतावाद में उद्भूत प्रायः आस्तिक मतों की यह विसंगति है कि वे नाम तो वेदों का लेते हैं, किन्तु वेद के वचनों की व्याख्या मनमानी और अपने हितों के अनुकूल करते हैं। इस सन्दर्भ में न तर्क को मानते हैं, न युक्ति को स्वीकार करते हैं और न प्रमाण का सम्मान करते हैं। बस, आँख मूंद कर केवल अपने स्थापित मत पर आग्रह करते हैं। इनके आग्रह और शब्दजाल में ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर परखा जा चुका '**त्रैतवाद**' का वैदिक दार्शनिक सिद्धान्त उपेक्षित कर दिया गया था।

महर्षि दयानन्द ने उस '**त्रैतवाद**' के वैदिक सिद्धान्त को पुनः प्रतिष्ठित किया। उन्होंने तर्कों, आठ प्रमाणों, सृष्टि प्रक्रिया और वेद के वचनों की सत्य व्याख्या प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया कि '**त्रैतवाद**' ही सत्य और प्रामाणिक है। त्रैतवाद का अर्थ है-**त्रैत**=ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन तत्त्वों को सत्य, नित्य, अनादि, अविनाशी, **वाद**=मानने का सिद्धान्त।

सभी आस्तिकवादी मत किसी-न-किसी रूप में ब्रह्म और जीव की सत्ता को तो स्वीकार करते हैं, किन्तु उनमें कुछ जगत् अर्थात् प्रकृति और प्राकृतिक संरचना को असत्य, माया, नश्वर और भ्रम मानते हैं। उसकी सत्ता को नित्य स्वीकार नहीं करते। वैदिक सिद्धान्त 'त्रैतवाद' प्रकृति अर्थात् जगत् के मूल कारण की सत्ता को नित्य और सत्य मानता है। आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों ने इस वैदिक मन्तव्य की पुष्टि कर दी है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि किसी द्रव्य का कभी अभाव नहीं होता, बस रूपान्तरण होता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने यह सिद्धान्त 'ऊर्जा-

द्रव्य समीकरण' नाम से दिया है जिसका संक्षिप्त सूत्र है- $E=MC^2$। इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार है-

''Energy can neither be created nor destroyed. It can be transformed from one form to an other form.'' (Annalen der Physik, 21 November, 1905)

अर्थात्- 'ऊर्जा को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न नष्ट ही। यह केवल एक अवस्था से दूसरी अवस्था में रूपान्तरित की जा सकती है। ऊर्जा (**energy**) द्रव्य (**mass**) में परिवर्तित होती है और द्रव्य ऊर्जा में।' इसका भाव यह हुआ कि ऊर्जा और पदार्थ विपरिणामी हैं। ऊर्जा नित्य है, अनश्वर है, अनादि है। वैदिक सिद्धान्त में यही मूल प्रकृति है। सांख्य दर्शन में इस मूल प्रकृति को सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था कहा है- **''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः''** (१.६१)। विज्ञान के कुछ विद्वान् आज इन तीन गुणों को परमाणु के तीन तत्त्वों-इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन के रूप में मानते हैं।

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में, पदार्थों के अवस्थान्तरण और नित्यता को स्पष्ट करने के लिए इस विषय को **'पदार्थ विद्या'** के माध्यम से समझाया है-

(१) **''प्रश्न**- चन्दनादि घिसके किसी को लगावे, वा घृतादि खाने को देवे, तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डालके व्यर्थ नष्ट करना, बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर- जो तुम **'पदार्थ विद्या'** जानते, तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता।''

(सत्यार्थप्रकाश, ३ समुल्लास)

(२) ''सुगन्धयुक्त जो कस्तूरी आदि पदार्थ हैं, उनको अन्य द्रव्यों में मिला के अग्नि में डालने से उनका नाश हो जाता है, फिर यज्ञ से किसी प्रकार का उपकार नहीं हो सकता...।

उत्तर- किसी पदार्थ का विनाश नहीं होता, केवल वियोग मात्र होता है।''

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषय विचार)

कुछ लोगों की वृत्ति नकारात्मक होती है। वे किसी को श्रेय नहीं दे पाते। प्रत्येक बात में वे शंका, सन्देह, प्रश्न, आपत्ति, विरोध का अवसर ही खोजते हैं। द्रव्य और ऊर्जा के अवस्थान्तरण की समान परिभाषा को पढ़कर कुछ लोग कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द ने यह परिभाषा आइंस्टीन से प्रेरित होकर लिखी होगी। मैं उनको बताना चाहता हूँ कि सन् १८६७ में महर्षि ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' लिखी थी और १८८०-८२ के मध्य 'सत्यार्थप्रकाश' लिखा था। आइंस्टीन का जन्म ही मार्च १८७९ में हुआ था और १९०५ में उसने अपना उक्त सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। यह महर्षि की अपनी प्रतिभा की प्रस्तुति थी जो उन्हें वेदों और वैदिक साहित्य से प्राप्त हुई थी। वैदिक त्रैतवाद में यह सिद्धान्त वेदों से ही स्थापित हो चुका था। उसी वैदिक सिद्धान्त के आधार पर प्रकृति को नित्य, अनश्वर घोषित करते हुए महर्षि दयानन्द सृष्टि-रचना की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं-

''नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथग् वर्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषादवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते।''

''अनादि, नित्यस्वरूप, सत्त्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म, पृथक्-पृथक् तत्त्वावयव विद्यमान हैं, उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है और संयोग-विशेषों से अवस्थान्तर होकर दूसरी-दूसरी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल बनते-बनाते विचित्र रूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से 'सृष्टि' कहाती है।'' (सत्यार्थप्रकाश, ८ समुल्लास)

अपनी वैज्ञानिक क्रान्तदृष्टि का परिचय देते हुए महर्षि दयानन्द एक वेदमन्त्र के भाष्य में इस प्रक्रिया को और स्पष्ट करते हैं-

''विश्वस्य दूतममृतम्, विश्वस्य दूतममृतम्''

(यजुर्वेद १५.३३)

अर्थ- ''मैं (विश्वस्य) सब भूगोलों के (दूतम्) तपाने वाले सूर्य रूप (अमृतम्) कारण रूप से अविनाशी स्वरूप (विश्वस्य) सम्पूर्ण पदार्थों को (दूतम्) ताप से जलाने वाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारण रूप अग्नि को स्वीकार करूँ।''

भावार्थ- ''यह सब अग्नि कारण रूप से नित्य हैं,

ऐसा जानना चाहिये।''

यह समझना चाहिए कि यह कारण ही आज की वैज्ञानिक भाषा में 'ऊर्जा' है। यह प्रकृति का रूप है। विज्ञान इसकी नित्यता के माध्यम से प्रकृति की नित्यता की घोषणा कर रहा है। यह त्रैतवाद की विजय है और अद्वैतवाद की पराजय है। अद्वैतवाद के जगत् के मिथ्यात्व की पुष्टि आज का विज्ञान नहीं करता, इसके अतिरिक्त एक और बिन्दु है जिसकी पुष्टि न तो आज का विज्ञान करता है और न वेद करते हैं। वह है, अद्वैतवाद में सृष्टि-रचयिता के रूप में ब्रह्म और ईश्वर दो पृथक् तत्त्वों का मानना। वैदिक त्रैतवाद और विज्ञान इस विषय में एकमत हैं। त्रैतवाद सृष्टिकर्ता एक ईश्वर को मानता है और विज्ञान भी एक ही शक्ति मानता है।

वेदों में ईश्वर और उसके स्वरूप का उल्लेख

वेदों में ईश्वर, जीव और प्रकृति के नित्य और स्वतन्त्र स्वरूप का वर्णन करने वाले अनेकानेक मन्त्र हैं जिनके आधार पर महर्षि ने त्रैतवाद के सिद्धान्त को पुनः प्रतिष्ठापित किया है। उनमें से कुछ प्रसिद्ध मन्त्र निम्नलिखित हैं-

(क) द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।। (ऋग्वेद १.१६४.२०)

''**अर्थ**-जो ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालन आदि गुणों से कुछ सदृश हैं, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त हैं, परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और वैसा ही अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ है। इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोगता है, और दूसरा चारों ओर अर्थात् भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न-स्वरूप है और तीनों अनादि हैं।'' (सत्यार्थप्रकाश, ८ समुल्लास)

(ख) ''स पर्यगात्...अकायम्...परिभूः स्वयम्भूः...अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।'' (यजुर्वेद ४०.८)

वह ईश्वर स्वयम्भू, अनादि, निराकार, सर्वव्यापक है और नित्य जीवात्माओं को वेदज्ञान प्रदान करता है। वह सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है।

(ग) ''हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।'' (यजु. १३.४)

नक्षत्र, ग्रह-उपग्रह आदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आदि चर-अचर जगत्-निर्माता, धारणकर्ता परमेश्वर है। हम जीव जन उसी सुख स्वरूप की भक्ति करें।

(घ) ''ईशावास्यमिदं सर्वम् यत् किञ्च जगत्यां जगत्।'' (यजुर्वेद ४०.१)

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्वामी सर्वव्यापक ईश्वर है। उसी के निमित्त से जगत् के पदार्थ प्राप्त हैं।

(ङ) ''ईशानमस्य जगतः'' (ऋग्वेद ७.३२.२२)

इस जगत् का निर्माता और स्वामी ईश्वर है। वह जगत् का निमित्त कारण है।

वेदों में जीव और उसके स्वरूप का उल्लेख

(क) ''जीवं व्रातं सचेमहि'' (यजुर्वेद ३.५५)

हमारा जीवात्मा सत्य बोलने वाला होवे।

(ख) ''इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि...शतं जीवन्तु।'' (यजुर्वेद ३५.१५)

मैं ईश्वर जीवात्माओं के लिए मर्यादा निर्धारित करता हूँ। उनका पालन करके वे सौ वर्ष जीयें।

(ग) ''उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्...यत्र प्रतिरन्ते आयुः।'' (ऋग्वेद १.११३.१६)

प्राणवान् जीवात्मा पुरुषार्थ से उन्नति करे। उससे जीवन दीर्घजीवी होता है।

(घ) ''आत्मा यज्ञेन कल्पताम्'' (यजुर्वेद १८.२९)

आत्मा यज्ञानुष्ठान से उत्तम बनता है।

वेदादि में प्रकृति और उसके स्वरूप का उल्लेख

(क) ''महीम्-अदितिम्... यस्यामिदं भुवनमाविवेश...।।'' (यजुर्वेद १८.३०)

अखण्डित प्रकृति में सारा चर-अचर जगत् समाविष्ट है।

(ख) ''चक्षाथे अदितिं दितिं च''

(ऋग्वेद ५.६२.८)

अविनाशी जगत् के मूलकारण प्रकृति का और विनाशी जगत्-कार्य का उपदेश करें।

(ग) ''स्वस्ति देवी-अदितिरनर्वणः''

(ऋग्वेद ५.५१.११)

यह दिव्यगुण युक्त अविनाशी प्रकृति हमारे लिए सुख-साधक हो।

(घ) ''स्तुषे...अदितिं मित्रं वरुणम्''

(ऋग्वेद ६.५१.३)

अखण्डित प्रकृति, मित्र, वरणीय व्यक्तियों का गुणानुवाद करता हूँ।

(ङ) ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्, बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।'' (श्वेताश्वतर उपनिषद् ४.५)

''प्रकृति, जीव, परमात्मा तीनों '**अज**' अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता, ये कभी जन्म नहीं लेते, अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उसका भोग करता है।'' (सत्यार्थप्रकाश, ८ समुल्लास)

आदि शंकराचार्य विद्वान् थे। ऐसा नहीं है कि उनको यह आभास न रहा हो कि वे जिस 'अद्वैतवाद' का समर्थन कर रहे हैं वह वेद विरुद्ध है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता आदि के भाष्य करते हुए बलात् अपने पक्ष में अर्थों को खींचा है। महर्षि दयानन्द का मानना है कि शायद, शंकराचार्य ने जैन-बौद्ध नास्तिक मतों का खण्डन करने के लिए विवशता में अद्वैतवाद को स्वीकार किया है। जिस गीता का भाष्य उन्होंने किया है उसका श्लोक ही उनके वाद का खण्डन करता है। वह श्लोक और प्रकरणानुसार उसका स्वाभाविक अर्थ इस प्रकार है-

''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।''

(२.१६)

अर्थात्-असत्=अविद्यमान तत्त्व का कभी वर्तमान=अस्तित्व नहीं होता और सत्=वर्तमान, विद्यमान तत्त्व का कभी अभाव नहीं होता।

जो जगत् प्रत्यक्ष वर्तमान है, जिसमें सब व्यवहार यथार्थ में सम्पन्न हो रहे हैं, वह असत्= मिथ्या, माया, भ्रम कभी नहीं हो सकता। यही गीता का कथन है। इतने स्पष्ट कथन का शीर्षासन अपने भाष्य में शंकराचार्य ने बलात् करा दिया। यदि जगत् और जगत् का मूलकारण असत्य=मिथ्या, भ्रम है तो शंकराचार्य का जन्म और जीवन भी मिथ्या तथा भ्रम था और उनका ज्ञान भी मिथ्या तथा भ्रम कहा जायेगा। अतः अद्वैतवाद का सिद्धान्त भी भ्रम ही माना जायेगा।

अब एक अन्य बिन्दु भी प्रकरणवश विचारणीय है। लोगों का मानना है कि आधुनिक विज्ञानवादी विद्वान् प्रकृति के अतिरिक्त किसी तत्त्व अर्थात् परमात्मा और आत्मा को नहीं मानते। यदि ये तत्त्व वस्तुतः होते तो विज्ञान के द्वारा सिद्ध होते और वैज्ञानिक भी इनको स्वीकार करते। इस शंका के उत्तर के प्रस्तुतीकरण में हम तर्क, युक्ति, प्रमाण के विस्तार में नहीं जाते क्योंकि वह सुदीर्घ विषय है। केवल व्यावहारिक यथार्थ की चर्चा ही करते हैं।

अनेक वैज्ञानिक वैयक्तिक रूप में ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हैं किन्तु वे विज्ञान के क्षेत्र में इसका दावा नहीं करते। उसका एक कारण है कि वे उसी को सिद्ध पदार्थ मानते हैं जो विज्ञान की लैब (प्रयोगशाला) में सिद्ध है। जो अभी असिद्ध है उसको नहीं मानते। भविष्य में जो सिद्ध होता जायेगा उसको वे मानते जायेंगे। उनके प्रयोगक्षेत्र की सीमा प्रकृति अर्थात् भौतिकता पर जाकर रुक जाती है। ईश्वर और जीव आध्यात्मिक क्षेत्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय हैं। ये न तो स्थूल वैज्ञानिक साधनों के द्वारा देखे-परखे जा सकते हैं, न इन्द्रियों के द्वारा। ये आत्मा के द्वारा अनुभवगम्य हैं और योग-वैज्ञानिकों के ज्ञेय तत्त्व हैं। कई वैज्ञानिक हैं जो इस विषय पर भी प्रयोग कर रहे हैं। प्राणियों का जन्म होता है, उनमें चेतना होती है। अच्छे-भले काम करते शरीर से चेतना निकल जाती है, उसकी मृत्यु हो जाती है। वह चेतना कहाँ से आती है? कहाँ चली जाती है? वह क्या वस्तु है? ये सब रहस्य हैं जिनका सटीक उत्तर अभी वैज्ञानिकों के पास नहीं है। प्राचीन ऋषियों-मनीषियों ने इसी को 'आत्मा' कहा है और आत्मा के निवास रूप शरीरों के निर्माता और अनन्त एवं अज्ञात

ब्रह्माण्ड के रचयिता तथा धर्ता को 'परमात्मा' कहा है। जब तक इन शक्तियों का सटीक और सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल जाता तब तक इन युक्तिसिद्ध शक्तियों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता।

अनेक वैज्ञानिकों ने निजी स्तर पर ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनसे त्रैतवाद के ईश्वरीय स्वरूप की पुष्टि होती है-

(क) आइजक न्यूटन आधुनिक विज्ञान के पिता माने जाते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Principia Mathematica' में ईश्वर के अस्तित्व के विषय में यह स्वीकार किया है-

''All this material Universe is the handiwork of one Omniscient and Omnipotent Creator'' (P.20)

अर्थात्- 'यह समस्त भौतिक संसार एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् कर्त्ता का बनाया हुआ है।' सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् कर्त्ता को ही त्रैतवाद में ईश्वर कहा गया है।

(ख) इसी न्यूटन के 'गति के सिद्धान्त' (Laws of Motion) आज पाठ्यक्रमों में सर्वमान्य रूप में पढ़ाये जाते हैं। उन्होंने सिद्धान्त दिया है कि किसी 'बाह्यशक्ति' के बिना न तो कोई स्थिर वस्तु गति करती है और न कोई गतिशील वस्तु रुकती है। किन्तु ये यह स्पष्ट नहीं कर पाये कि वह 'बाह्यशक्ति' क्या है और कौन-सी है। हाँ, न्यूटन के ऊपरि उद्धृत मत को यदि इस कथन से संयुक्त करके पढ़ें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह शक्ति 'ईश्वर' ही है। भारतीय ऋषियों-मनीषियों ने ब्रह्माण्ड को रचने वाली और संचालित करने वाली उस शक्ति को ब्रह्म या ईश्वर ही कहा है। न्यूटन का गति-सिद्धान्त इस प्रकार है-

''A body in a state of rest or of motion will continue in its state of rest or of motion until an external force is applied.''

ध्यातव्य है कि यहाँ प्राकृतिक और वैद्युतिक बाह्यबल से भिन्न शक्ति अभिप्रेत है। इस उद्धरण का भाव है- 'प्रत्येक स्थिर वस्तु स्थिर अवस्था में और प्रत्येक गतिशील वस्तु गतिशील अवस्था में तब तक बनी रहेगी जब तक कोई 'बाह्यबल' उसमें परिवर्तन न लाये, बदलाव के लिए प्रेरित न करे।'

(ग) इंग्लिश में एक अन्य पुस्तक मिलती है जिसका नाम है- 'Science and Religion' (विज्ञान और धर्म) इसमें सन् १९१४ में लन्दन के ब्राउनिंग हॉल में सम्पन्न सात दिवसीय सम्मेलन में पठित, विश्व के सात उच्च वैज्ञानिकों के ईश्वर विषयक मत संकलित हैं। उनमें से वैज्ञानिक लॉर्ड केल्विन का ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूप के विषय में मत निम्न प्रकार है-

''Science positively affirms Creative Power. We are absolutely forced by science to believe with perfect confidence in a Directive Power, in an influence other than physical and electrical forcecs.'' (P-48)

अर्थात्- 'विज्ञान निश्चयात्मक रूप से सृष्टिकर्ता की सत्ता को स्वीकार करता है। विज्ञान द्वारा पूर्ण विश्वास के साथ एक सर्वोच्च शासक शक्ति को मानने के लिए विवश किये गये हैं। एक ऐसी शक्ति जो भौतिक और वैद्युतिक शक्तियों से भिन्न है।' स्पष्ट है कि वह सर्वोच्च शक्ति 'ईश्वर' ही हो सकती है।

आइजक न्यूटन के विपरीत मत रखने वाले आधुनिक वैज्ञानिकों का दूसरा एक वर्ग है जो सृष्टिरचना में किसी ईश्वर-विशेष का कर्तृत्व नहीं मानता। वह संसार की रचना को प्राकृतिक परमाणुओं का सम्मिश्रण होने पर स्वतः स्फूर्त मानता है। स्टीफन हॉकिंग इस वर्ग के प्रमुख प्रतिनिधि हैं। वैज्ञानिकों के तीसरे वर्ग में वे वैज्ञानिक हैं जो जानते हुए भी सत्य को स्वीकार नहीं करना चाहते। इस वर्ग के प्रतिनिधि वैज्ञानिक आइन्स्टीन हैं। श्री डब्ल्यू.एम. अर्नेस्ट हॉकिंग नामक वैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक 'साइन्स एण्ड दि आइडिया ऑफ गॉड' में एक उद्धरण दिया है जिसमें आइन्स्टीन की ओर से यह दावा किया बताया गया है कि 'प्रकृति में नियमबद्ध व्यवस्था और बुद्धिमत्ता को देखकर वे यह विश्वास करते हैं कि कोई पूर्ण सत्ता है जो इस सृष्टि का निर्माण और संचालन करती है।' अन्यत्र वे एक परस्पर-विरोधी कथन करते हैं। वे कहते हैं कि 'मैं प्रतिदिन दिन में घड़ी में अनेक बार समय देखता हूँ किन्तु मुझे इसके निर्माता का कभी ध्यान नहीं आता। अतः ईश्वर में विश्वास

करने की आवश्यकता नहीं।' इस सन्दर्भ से एक तथ्य स्वत: सिद्ध हो जाता है कि जाने-अनजाने में श्री आइन्स्टीन यह तो स्वीकार कर ही रहे हैं कि जैसे घड़ी का कोई कर्त्ता है ऐसे संसार का भी कोई कर्त्ता तो है ही। उसे आप नाम कुछ भी दें, याद करें या न करें, यह आपकी स्वतन्त्रता है। इससे कर्त्ता, जो सभी आस्तिक मतों में 'ईश्वर' कहाता है, उसका निषेध तो नहीं होता।

प्रकृतिवादी नास्तिक वैज्ञानिकों का मन्तव्य अपूर्ण, तर्कहीन और असन्तोषजनक है। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि सृष्टि में नियमबद्ध व्यवस्था है। इसी आधार पर वे वैज्ञानिक अपना नियम, फार्मूला या व्यवस्था निर्धारित करते हैं जिनके अनुसार विज्ञान काम करता है। नियमबद्धता जड़ प्रकृति का कार्य नहीं है अपितु बुद्धिमान् कर्त्ता का है। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि नास्तिक वैज्ञानिक अभी तक ईश्वर को सिद्ध कर नहीं पाते, अत: उससे सम्बन्धित प्रश्नों से बचने के लिए परमात्मा और आत्मा की सत्ता का ही निषेध कर देते हैं-'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।' इस प्रकार वे अपनी अयोग्यता की छवि से स्वयं को बचा लेते हैं। आध्यात्मिक विज्ञान के पारखी वे होते नहीं जो उस बुद्धि से वे विचार करें।

निष्कर्ष यह है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति-विषयक तर्कपूर्ण, सत्य, पूर्ण, व्यावहारिक और सन्तोषजनक उत्तर न अद्वैतवाद आदि से मिल सकता है, न नास्तिकवाद से। केवल 'वैदिक त्रैतवाद' से ही उसका पूर्ण और सटीक उत्तर मिल सकता है। वही अध्यात्म और विज्ञान की कसौटी पर खरा सिद्ध होता है। **- डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का

स्थापना दिवस

दिनांक २७ फरवरी २०१९

मुख्य अतिथि - **श्री सज्जनसिंह कोठारी**
लोकायुक्त राजस्थान

विशिष्ट अतिथि - **श्री जगदीश प्रसाद शर्मा**
प्रबन्ध सम्पादक-दैनिक भास्कर समूह

मुख्य वक्ता - **स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती**
संसद् सदस्य

स्थान - ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

समय - प्रात: १०.०० से १.०० बजे तक

इस अवसर पर आप सभी आर्यजन सादर निमन्त्रित हैं।

निवेदक

डॉ. वेदपाल
प्रधान

कन्हैयालाल आर्य
मन्त्री

सम्पर्क सूत्र- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०, ०९४६०४२११८३

मृत्यु सूक्त-२४

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। - सम्पादक

मृत्यो पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः।।

इस वेद चर्चा के प्रसंग में हम ऋग्वेद के दशम मंडल के १८ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। हमने पिछले प्रसंग में इसकी प्रथम पंक्ति की चर्चा की थी और उस चर्चा में हमने देखा था, **मृत्योः पदं योपयन्तः** अर्थात् हम मृत्यु के कारण को हटाते हुए, **द्राघीय आयुः** लम्बी आयु को, **प्रतरं दधानाः** श्रेष्ठता के साथ धारण करें। अब कैसे पता लगे कि हमारी आयु श्रेष्ठ है? लंबी है, यह तो हमको समय की अवधि से पता लग गया। हमने आयु को श्रेष्ठ भी चाहा है और लम्बी भी चाहा है। जब हम संध्या करते हैं तो संध्या के अन्त में प्रतिदिन एक मन्त्र बोलते हैं- **तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्**- वो कहता है, वह परमेश्वर हमको जब सामने दिखाई दे रहा है, तो उससे हम चाहते क्या हैं **पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रणुयाम शरदः शतम्** और इससे **भूयश्च शरदः शतात्।** यदि आयु केवल इतनी ही होती, आगे न बढ़ती होती तो **भूयश्च शरदः शतात्** कहने की आवश्यकता ही नहीं थी। आयु बढ़ सकती है, बढ़ती है, यह शब्द बता रहा है, **भूयश्च शरदः शतात्**। हमारी आयु सौ वर्ष की हो, सौ वर्ष से अधिक की हो, लेकिन कहता है **अदीनाः स्याम** अर्थात् दीन-हीन होकर ना हो।

दैन्य असामर्थ्य का प्रतीक है, असामर्थ्य का परिणाम है। जब व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता तब वो याचना करता है, जब इसके पास कुछ नहीं होता तो याचक बनता है। आदमी भिक्षुक कब बनता है? जब उसके पास अपना नहीं है। यदि अपना धन नहीं है तो धन की याचना करता है और यदि उसका अपना सामर्थ्य नहीं है तो सहयोग की याचना करता है। उसकी इन्द्रियाँ सक्षम नहीं है तो वह दूसरों से उनके सहयोग की बात करता है। वह कहता है- **पश्येम शरदः शतम्**, मेरी आयु लम्बी तो हो, लेकिन वो लम्बी आयु इन्द्रियों के साथ हो। यदि मैं देख ही न पाऊँ तो मेरी आयु के होने का कितना लाभ होगा मुझे? इसलिये अन्त में कहता है **अदीनाः स्याम**, दीनता भरा जीवन ना हो। निर्बलता, अभाव, पीड़ा, असामर्थ्य वाला जीवन नहीं चाहिए। तो जीवन लम्बा भी चाहिए और जीवन समर्थ भी चाहिए।

जो बात सन्ध्या के मन्त्र में कही, वो ही बात हम इस मन्त्र में देख रहे हैं। हमने पहली पंक्ति में देखा था कि हम आयु को लम्बा कर सकते हैं और आयु को अच्छा भी बना सकते हैं। क्या पहचान है हमारी आयु के लम्बे होने की और अच्छे होने की? अब जो अगली पंक्ति है, उसकी शब्दावली ध्यान देने योग्य है-**आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः**। हमारे जीवन की संपूर्णता कैसे होगी, प्रयोजन की सिद्धि कैसे होगी? तो कहता है, **आप्यायमानाः प्रजया धनेन।** एक मनुष्य के जीवन में उसके ऐश्वर्य, उसकी समृद्धि, उसकी प्रगति, उसका विकास दो ही बातों से प्रकट होता है-उसके परिवार से, उसकी संतति से, उसकी प्रजा से और उसके साधनों से।

आयु से दोनों प्रयोजन होने चाहिए। साधनों को प्राप्त करने का सामर्थ्य तथा संरक्षित करने का सामर्थ्य। शास्त्रों में कहा गया है **'योगक्षेम'**, **योगक्षेमं व आदाया भूयासमहमुत्तमम्**। योगक्षेम हम तब पूछते हैं, जब कोई हमें मिलता है। यह 'योग क्षेम' क्या होता है? **अप्राप्तस्य**

प्राप्तिर्योगः, प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः। जो हमको मिला है उसको संभालने की क्षमता, जो हमको मिला है उसको उपयोग करने की क्षमता, हम उसको रख सकें इसकी क्षमता और जो प्राप्त नहीं है उसके उपार्जन की योग्यता। योग-अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम, प्राप्त की रक्षा अर्थात् जो हमको नहीं मिला है उसके लिए हमको प्रयत्नशील होना चाहिए, प्राप्त करना चाहिए।

हमारी त्यागवृत्ति अप्राप्त पर निर्भर नहीं करती हमारे पास है ही नहीं, इसलिए हम त्यागी नहीं होते। हमारे में प्राप्त करने का सामर्थ्य है, हमने उसे प्राप्त भी किया है, लेकिन उसका उपयोग कहाँ करना, कहाँ नहीं करना, कब करना, यह हमारे आधीन है। प्राप्त होने पर भी, उपयोग में ला सकने पर भी उपयोग में न लाना या अच्छे के लिए उपयोग में लाना-यह हमारी श्रेष्ठता है, यह हमारा त्याग है। यह जो त्याग है उसके लिए हमको प्राप्त करने का सामर्थ्य पहले चाहिए। त्याग बाद में होता है। सामर्थ्य के अभाव में त्याग नहीं है, अप्राप्ति है, अभाव है, उसे हम दरिद्रता कहते हैं, निर्धनता कहते हैं, गरीबी कहते हैं। कोई चीज हम नहीं प्राप्त कर सकते यह हमारी अयोग्यता होती है, लेकिन हम किसी को प्राप्त कर सकते हैं, प्राप्त करके उसका सदुपयोग कर सकते हैं, हम श्रेष्ठता के लिए उसको दे सकते हैं, यह हमारा त्याग है। त्याग श्रेष्ठता के लिए होता है, त्याग यूँ ही फेंकने का नाम नहीं है, बल्कि जो है उसको जहाँ आप लगा रहे हैं उससे अच्छे के लिए लगाना है।

इसको आप एक उदाहरण से समझ सकते हैं-हम महापुरुषों को बड़ा त्यागी कहते हैं और इसलिए त्यागी कहते हैं कि जिन-जिन चीजों से हम प्रेम करते हैं, जिन चीजों की इच्छा करते हैं, जिनका संग्रह करते हैं, वो उसको छोड़ते हैं। यदि छोड़ना मात्र त्याग है तो जिससे छूटा हुआ है, वह भी तो त्यागी है! ऐसा नहीं है, त्याग तो यही है कि श्रेष्ठ के लिए उसे दिया है। यदि धन को मैंने जुए में छोड़ दिया तो यह त्याग नहीं है, लेकिन मैंने परोपकार में लगा दिया, यह त्याग है। हम कहते हैं ऋषि दयानन्द बहुत त्यागी हैं। उन्होंने स्वीकार किया है, जो उससे अच्छा है उसे अपनाया है। जब हम श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं तो निम्न चीजों को त्याग की कोटि डालते हैं। यह तो मलिनता है, कचरा है, हम रोज घर में से निकालते हैं, फेंक देते हैं। रोज नहा कर, धो कर हटा देते हैं, वह त्याग नहीं है। त्याग यह है कि जो काम मैं करता हूँ तो अच्छे के लिए करता हूँ, श्रेष्ठता के लिए करता हूँ। इसलिए मैं प्राप्त करूँ, प्राप्त करके उसकी रक्षा करूँ, रक्षा करके उसका सदुपयोग करूँ, श्रेष्ठ के लिए लगाऊँ, यह मेरी योग्यता है।

अप्राप्तस्य प्राप्तिर्योगः, प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः। जो प्राप्त है उसको मैं सुरक्षित भी रख सकता हूँ, मेरे पास सामर्थ्य है। इस मन्त्र में, **मृत्योः पदं योपयन्तो** में तो पहली बात कह दी कि मुझे आयु बढ़ानी है और अच्छी तरह से, श्रेष्ठता से बढ़ानी है, लेकिन उससे मुझे करना क्या है **प्रजया धनेन**। मैं अपनी वृद्धि दोनों तरह की चाहता हूँ, अपने परिवार की भी, अपनी सम्पत्ति की भी। हमारे यहाँ इस बात को बहुत ही अच्छे शब्दों में बताया गया है-वेद का एक मन्त्र कहता है-**मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्** एक मनुष्य जो बना है, जैसा भी बना, यह उसके सामर्थ्य की निन्दा नहीं है, किन्तु उससे यह अपेक्षा नहीं है कि वो यहीं टिका रहे। वो अपने को जितना बना सकता है उतना तो बनाए। यदि वह अपने को राक्षस होने से बचा ले, असुर होने से बचा ले, कृपण होने से बचा ले, अच्छी बात है, लेकिन उसकी श्रेष्ठता इस बात में है कि वह अपने आने वाली पीढ़ी को अपने से अच्छा बनाए। **मनुर्भव**- वेद एक आदेश दे रहा है, तुम तो मनुष्य बनो, लेकिन जनया दैव्यं जनम्- **दैव्यं जनम् जनय** जिसको तू उत्पन्न करना चाहता है, वो तेरे से अच्छी होनी चाहिए। यह कसौटी है।

हमारे आजकल के लोग अपनी श्रेष्ठता को बताने के लिए कह देते हैं-हम तो बहुत अच्छे हैं, हम माता-पिता की बड़ी सेवा करते हैं, माता-पिता का कहना भी मानते हैं, बड़े आज्ञाकारी हैं, पर यह आपकी योग्यता नहीं है। आप जो हैं वो आपके माता-पिता के प्रयासों का परिणाम है। हम क्या हैं, यह तो हमारी अगली संतति बताएगी। यदि हमसे अच्छी है, हमसे श्रेष्ठ है, हमसे योग्य है, हमसे संस्कारित है, तो हमारे प्रयत्न सफल हैं। हमारी प्रजा-प्रकृष्ट होनी चाहिए, 'ज' उत्पन्न होने को कहते हैं, 'प्र' श्रेष्ठता को

कहते हैं। हमारी जो सन्तान है उसको 'प्रजा' कहा है, तो प्रजा वह है जो प्रकृष्ट उत्पन्न होने वाली चीज है। **प्रजया** हम अपनी संतति के द्वारा श्रेष्ठ हों **मनुर्भव, जनया दैव्यं जनम्**। हम मनुष्य बनें और अपनी आने वाली संतति को देव बनायें, श्रेष्ठ बनायें, अपने से श्रेष्ठ बनायें। यदि इस नियम का, इस विचार का पालन किया जाए तो कितना अच्छा होगा।

हम सदा यह प्रयत्न करें कि जो कुछ हमारे पास है, हम उसको और अच्छा बनायें। क्योंकि हमारा पतन नीचे की ओर जाने से होता है, बढ़ाने की इच्छा न होने से होता है, रक्षा करने के भाव न होने से होता है। एक व्यक्ति अपने माता-पिता की संपत्ति को प्राप्त करके खर्च कर देता है, बरबाद कर देता है, समाप्त कर देता है तो हम उसे निकृष्ट कहते हैं। जो अपने माता-पिता से प्राप्त घर है, दुकान है, मकान है उसे बहुत नहीं बढ़ा पाता, लेकिन बहुत घटाता भी नहीं है, वो व्यक्ति मध्यम है। न बहुत अच्छा है, न बहुत बुरा है। जो व्यक्ति माता-पिता की दी हुई सम्पत्ति को हजारों, लाखों गुना बढ़ा देता है, वह श्रेष्ठ है, वह उत्तम है। तो हम नीचे न जायें, यदि हम वहीं के वहीं रहते हैं तो मध्यम हैं, लेकिन हम अपनी सन्तान को अपने से अच्छा बना सकते हैं, श्रेष्ठ बना सकते हैं, तब हमारा जीवन 'प्रतरं' हो जाएगा, श्रेष्ठता वाला हो जाएगा। क्योंकि श्रेष्ठता की दो ही कसौटी हैं-आप्यायमानाः प्रजया धनेन, आप्यमाना=बढ़ते हुए। हमारे घर में सब बढ़ता हुआ होना चाहिए। संतति बढ़ रही है तो संपन्नता भी बढ़ती हुई होनी चाहिए। सम्पत्ति तो बढ़े नहीं और सन्तान बहुत बढ़ जायें तो फिर दरिद्रता आ जाएगी। हमारे यहाँ संतति का होना सामर्थ्य के बढ़ने का प्रतीक होना चाहिए, संपन्नता के बढ़ने का प्रतीक होना चाहिए, घटने का नहीं। कैसे पता लगता है कि बढ़ रहा है, तो वेद कहता है, **प्रजया धनेन** परिवार श्रेष्ठ है, बड़ा है, संस्कारित है और उसके साधन भी अच्छे हैं **धनेन**= धन के द्वारा, वो अपने दानादि गुणों के द्वारा बढ़ता है। श्रेष्ठता बताने वाले ये दो शब्द हैं, यह कसौटी है। एक मनुष्य अपने जीवन में सफल है, उसने जो प्राप्त करना था, वह किया है, तो क्या प्राप्त किया है-कि उसकी संतति, उसका परिवार अच्छा है और उसने अपने सामर्थ्य से अपने साधनों को भी बहुत बढ़ा लिया है। इसलिये कहा गया है-**प्रजया धनेन**।

परोपकारी के सम्बन्ध में घोषणा

प्रकाशन - परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर

संपादक	-	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	**मुद्रक का नाम**	-	श्री मोहनलाल तँवर,
नागरिकता	-	भारतीय	**पता**	-	वैदिक यन्त्रालय,
पता	-	म.नं. ४२९, सेक्टर-७, गुड़गांव, हरि.			केसरगंज, अजमेर
प्रकाशक	-	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	**प्रकाशन अवधि**	-	पाक्षिक
नागरिकता	-	भारतीय			
पता	-	संरक्षक, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर			

मैं, डॉ. सुरेन्द्र कुमार एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सही है।

फरवरी २०१९ **प्रकाशक : डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पं. लेखराम जी के मौलिक तर्क- पं. लेखराम जी के साहित्य में वैदिक मन्तव्यों के मण्डन तथा अवैदिक मतों के खण्डन में जितने ठोस और मौलिक तर्क हैं उतने आर्यसामाजिक साहित्य में सत्यार्थप्रकाश के पश्चात् किसी भी और विद्वान् के साहित्य में नहीं मिलेंगे। हम परोपकारी में पहले भी लिख चुके हैं कि आरम्भिक काल के अधिकांश आर्योपदेशक पं. लेखराम के साहित्य का स्वाध्याय करके सफल मिशनरी बन गये। श्री पं. लेखराम के साहित्य के इस कीर्तिमान तक पहुँचने वाले एक ही विचारक को जन्म देने का गौरव प्यारे आर्यसमाज को प्राप्त हुआ है। पं. लेखराम जी के पश्चात् श्रद्धेय गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के साहित्य में हमें नये-नये मौलिक तर्क व प्रमाण आर्य सिद्धान्तों के मण्डन और अवैदिक मतों के खण्डन में मिलते हैं। गंगा-ज्ञान सागर के चारों भाग तथा गंगा ज्ञान धारा के तीन भाग इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं।

अमृतसर में मौलवी गुलाम अली जी इस्लामी साहित्य के जाने माने आलिम से पण्डित जी का बहुत प्रेम था। पण्डित जी एक बार उन्हें मिलने गये तो वह अपने शिष्यों को पढ़ाते हुये कह रहे थे कि यशिमाह नबी ने सायंकाल होने पर सूर्य को कहा, ''खड़ा रह। मेरे कार्य की हानि होती है। वह आज्ञा पाकर वहीं खड़ा हो गया।''

पण्डित जी ने कहा कि आप तो बहुत बड़े विद्वान् हैं, सब प्रामाणिक इस्लामी साहित्य के जानकार हैं फिर इन बातों की शिक्षा कैसे देते हैं? बस इतना प्रश्न उठाना था कि अगला तर्क देना ही न पड़ा। मान्य मौलवी जी ने कहा कि यदि हम ऐसा न मानें तो लोग हमें काफ़िर कहेंगे। वे हमें काफ़िर घोषित न करें सो ऐसा कहते हैं। कुरान की शैतान विषयक आयतों पर जिनमें अल्लाह आदम की सन्तान को कहता है कि शैतान को मत पूजो। यह तुम्हारा शत्रु है।

इस पर पण्डित जी ने लिखा है कि सत्यनिष्ठ बुद्धिमान् इस शैतान विषयक विचारधारा से बहुत कष्ट पा रहे व भटक रहे हैं। जब भी पाप होता है। शैतान ने दुष्कर्म करवा दिया कहकर दोष उस पर थोप देते हैं। पं. लेखराम जी ने इस पर टिप्पणी की है कि ''वास्तव में शैतान को पाचनवटी मानकर मोमिनों ने पाप से बचने के प्रयास छोड़ दिये हैं।'' ऐसी टिप्पणी करने वाले पहले दार्शनिक पं. लेखराम हैं और इस छोटे से वाक्य ने इस्लाम के मानने वालों को झकझोर कर रख दिया है। खलबली तो पहले भी इस्लाम में मची रहती थी।

सर सैयद अहमद ने लिखा है कि सपने में एक मौलवी ने शैतान को देखकर कसकर उसकी दाढ़ी पकड़ ली और थप्पड़ मार-मार कर उसकी गाल लाल कर दी। उपाध्याय जी भी पं. लेखराम का अनुकरण करके यह दृष्टान्त बहुत दिया करते थे। मुसलमान शैतान को मानते हैं-

''राहज़ने दीन व दुज़दे ईमारा'' अर्थात् मज़हब का डाकू तथा आस्था विश्वास का चोर

पण्डित जी ने यह लिखा, ''नफस व शैतान हर दो यक तन बूदंद।'' शैतान व पापवालन दोनों की सत्ता पृथक् है, परन्तु शरीर एक ही है।

कमाल की बात तो यह है कि पण्डित जी की 'पाचनवटी' वाली टिप्पणी के प्रतिवाद में किसी भी बड़े से बड़े मौलवी ने एक भी पंक्ति नहीं लिखी, यह आर्यसमाज की दिग्विजय है।

लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द तथा पं. रुचिराम- देवनगर महेन्द्रगढ़ के आर्यवीर अत्यन्त श्रद्धा से लौहपुरुष स्वतन्त्रानन्द ग्रन्थ का प्रकाशन पुनः कर रहे हैं। ग्रन्थ प्रकाशन आधीन है। इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र महाराज के एक प्रमुख, परन्तु विलक्षण शिष्य पं. रुचिराम की पर्याप्त चर्चा है। आर्यसमाज का तथा आधुनिक भारत का सन् १९४७-१९७१ तक का इतिहास पं. रुचिराम जी की शूरता व सेवा का वर्णन किये बिना अधूरा है। आर्यसमाज के इतिहास पर लिखने वाले आर्यसमाजी ही उनका नाम नहीं लेते तो पराये क्योंकर लेवें? एक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' तथा हैदराबादी पुराने लेखक अवश्य उनका नाम लेते आये हैं।

पण्डित जी निधन से पूर्व गुप्तचर के रूप में भिन्न-भिन्न युद्धों व आन्दोलनों में वो किस रूप में थे-ऐसे सब फोटो मुझे दे गये। कुछ सज्जनों को इसका पता चल गया। वे इन चित्रों को प्राप्त करने के लिये दबाव देते रहे। उन्हें कहा गया, ''चित्र तो सुरक्षित हैं, परन्तु खोजने पड़ेंगे। ऐसे ही किसी को यह धरोहर नहीं सौंपी जा सकती।'' कल १३ जनवरी को ये सात फोटो मिल गये। स्वामी जी का जीवन-चरित्र इसके लिये सबसे उपयुक्त ग्रन्थ है। सात चित्रों पर व्यय भी अच्छा होगा। सारा बोझ देवनगर वालों पर ही क्यों? यद्यपि उनका हृदय विशाल और श्रद्धा से भरपूर है तथापि श्री अनिल जी आर्य, श्रीमान् महेन्द्रसिंह आर्य तथा श्रीयुत् लक्ष्मण 'जिज्ञासु' जी से चलभाष पर विचार किया। लक्ष्मण जी ने भावों से भरे हृदय से कहा, ''गुरुवर के ग्रन्थ में पण्डित जी पर आठ-दस पृष्ठ लिखकर सातों चित्र दें। जितनी राशि कहेंगे मैं दूँगा।''

श्रीमान् महेन्द्र सिंह जी ने, प्रिय अनिल ने कहा, ''पूछते क्यों हैं जो करणीय कार्य है कर दो।'' यह कहकर दोनों ने समस्त आर्यजगत् का विशेष रूप से स्वामी सर्वानन्द जी महाराज और स्वामी सोमानन्द जी के जन्मक्षेत्र दक्षिणी हरियाणा की धरती का सिर ऊँचा कर दिया है। उनका उत्तर सुनकर यह लेखक इतना गद्‌गद हो गया है कि हर्षोल्लास से आज इस विषय में कुछ नहीं लिख सकता। बस यह कहना है कि पंजाब के आर्यों में कुछ दम है तो वे भी अपना कर्त्तव्य पहचानें। यह ग्रन्थ स्वामी श्रद्धानन्द जी पर रचे गये हमारे ग्रन्थ से कुछ बड़ा ही होगा। यह आर्यसमाज के इतिहास पर अथाह प्रकाश डालेगा।

हम तो महाराज के सब बड़े-बड़े शिष्यों के श्री स्वामी सर्वानन्द जी, पं. शान्तिप्रकाश जी, पं. पूर्णचन्द जी (स्वामी पूर्णानन्द, मेरठ), पं. नरेन्द्र जी हैदराबाद, पं. निरञ्जनदेव जी आदि के चित्र देना चाहते हैं। दो-चार-पाँच आर्य ही जानते हैं कि भारत के G.O.M. सबसे वयोवृद्ध वैदिक विद्वान् १२५ वर्षीय जीवित स्वतन्त्रतासेनानी पं. सुधाकर जी बैंगलूर गुरुदेव स्वतन्त्रानन्द के भी शिष्य हैं। हम महाराज पर उनके नये श्रद्धासुमन लेने फिर एक बार कर्नाटक जायेंगे। क्या पं. सुधाकर जी का फोटो न दें?

आर्यो! सिर पर कुल्हाड़े के वार सहने वाले, हैदराबाद के विजेता का आपके घर-घर आकर परिचय दिया जावे? दीनानगर, बटाला, कादियाँ, अमृतसर, पठानकोट, गुरदासपुर, लुधियाना वाले भी तो कुछ बोलें और बतावें।

कहाँ लिखा है?- श्री डॉ. हरिश्चन्द्र की पत्नी डॉ. कविता जी ने एक प्रसंग में पं. मदनमोहन जी मालवीय द्वारा आर्यसमाज के गौरव के लिये कहे गये बहुचर्चित कुछ वाक्य कहे, आर्यसमाज दौड़ेगा तो हिन्दू चलेगा, आर्यसमाज चलेगा तो हिन्दू बैठेगा आदि कहे। हमारे एक कृपालु जिन्हें एक आर्यविद्वान् फौजदारी वकील कहा करते हैं। झट से कूद पड़े कि यह झूठ है। कहाँ लिखा है? हर बात पर कहाँ लिखा है? यह बात सरल है। लिखित प्रमाण का अपना ही महत्त्व है, परन्तु हर बात लिखित ही नहीं होती। अलिखित परम्परा से कथित सीख, उपदेश, व्यवहार भी अकाट्य प्रमाण होता है। ''रोटी खाओ घर की, सेवा करो समाज की और गाली खाओ समाजियों की'' यह वाक्य पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी द्वारा अपने शिष्यों को सीख में कहे जाते थे। अनेक जन यह वाक्य सुनाते रहे हैं। हमने पं. नरेन्द्र जी के मुख से भी सुना कि लाहौर से विदाई लेते स्वामी जी ने उन्हें ऐसा ही कहा था, परन्तु स्वामी जी ने कहीं लिखा नहीं। शिष्य सुनाते रहे। इस पर किसी ने पं. शान्तिप्रकाश जी आदि को झूठा नहीं घोषित किया।

मालवीय जी ने पं. ईश्वरचन्द्र जी दर्शनाचार्य की ओर संकेत करके तीन बार कहा, ''पण्डित हो तो ऐसा।'' यह कहीं भी लिखा गया उस समय का प्रमाण किसी ने नहीं देखा सुना। हमने स्वामी सर्वानन्द जी महाराज जो वहाँ सभा में थे उनसे सुनकर लेखबद्ध कर दिया। स्वामीजी की सत्यवादिता सर्वमान्य रही। कहाँ लिखा है? ऐसा कहने वाले को क्या कहा जावे? हम मुँह इतिहास गढ़ने वाले पापी नहीं है। ला. साईंदास को रसाला एक आर्य के लेखक के रूप की रट को लगाने वाला यह गवेषक इतिहास से एक प्रमाण नहीं दे सकता कि साढ़े तीन वर्ष में देवनागरी का विशेष ज्ञान रखने वाला अल्पशिक्षित कोई व्यक्ति वेद, व्याकरण, उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ, स्मृतियाँ, वेदांग, पुराण सबका मर्मज्ञ महापण्डित बन गया। लाला साईंदास को उनके किसी भी भक्त शिष्य, समकालीन व्यक्ति ने विद्वान्, सिद्धान्त-मर्मज्ञ नहीं लिखा। प्रबन्धक ही

सब बताते व लिखते रहे। हमें नीचा दिखाने के लिये गवेषक बनने के जोश में बार-बार लाल साईंदास जी को रसाला एक आर्य का लेखक बताने की रट लगा रहा है।

१. हम यह जानना चाहते हैं जून १८७७ के अन्त में लाल साईंदास आर्यसमाज से जुड़े। जून १८९० में उनका निधन हो गया। इन तेरह वर्ष में वेद, दर्शन, उपनिषद्, व्याकरण आदि सब शास्त्रों के ऐसे महापण्डित ने क्या साहित्यिक नसबन्दी करवा ली थी जो दोबार एक भी लेख न दिया। पुस्तक की बात ही छोड़िये। इतने नियम, इतने शास्त्र कब और कहाँ तथा किससे पढ़े?

२. जून १८७७ से जून १८९० तक किसी भी समाज में एक भी व्याख्यान न दिया। एक भी उपदेश, शंका-समाधान न किया। देशभर के सैकड़ों मूर्धन्य संस्कृत पण्डितों के आक्षेपों का उत्तर दे दिया। शास्त्रार्थ एक भी न किया।

३. रसाला एक आर्य की कोई प्रति कहीं से यह महागवेषक ले आये और उस पर लेखक के रूप में उसका नाम दिखा दे। जो लेख मैंने उस पर लिखे या जो चर्चा सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में उसकी की गई है उसमें माननीय भूल से भी यदि लेखक शब्द आ गया तो उसको भी यह अपने लिये बहुत बड़ी ट्रॉफी मान रहा है।

४. हमारे पास रसाला एक आर्य की दो प्रतियाँ हैं। दोनों अलग-अलग छपे संस्करण लगते हैं। एक प्रति जो अब मिली है वह डॉ. वेदपाल जी की कोटि के विद्वान् को भी दिखा दी। उन्हें फ़ारसी लिपि का कुछ ज्ञान है। सारी पुस्तक में लेखक के रूप में लाला जी का कहीं नाम नहीं है। स्वामी सत्यप्रकाश जी, श्रद्धेय मीमांसक जी का नाम मैं कब नहीं लेता? उनके जीवन काल में ही लेता था। अब उनका नाम लेने में मेरा क्या स्वार्थ है। मेरा हृदय भक्तिभाव से छलक पड़ा। आपको बुरा लगता है तो हम बुरा क्यों मानें?

हम आपके कहे का बुरा मानते नहीं।
हम जानते हैं आप हमें जानते नहीं।।

५. महोदय रसाला एक आर्य ऋषि ने नहीं छपवाया। ऋषि से पूछ कर उत्तर कोलकाता से भी छपा। पंजाब में समाज फूल-फल रहा था। यहाँ उर्दू में पुस्तक की माँग थी। अनुवादक पूज्य साईंदास जी मान्यता प्राप्त थे। देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी की कोटि के विचारक, इतिहासकार व तपस्वी ने लाला साईंदास जी को अल्पशिक्षित व अल्पयोग्यता वाला लिखा है। क्या भाई परमानन्द जी की सम्मति को मत को आपके दबाव में झूठा मान लें? कोलकाता से जो उत्तर छपा वह भी क्या साईंदास जी ने लिखा? इस पर अब तक क्यों मौन साध रखा है?

स्वामी केशवानन्द जी- श्रीमान् लक्ष्मीचन्द जी मेरठ द्वारा स्वामी जी पर छपा लेख सामने आया। मान्य लक्ष्मीचन्द जी ने अच्छी भावना से यह लेख लिखा। भूल यह कर गये कि एक ही पुस्तक देखकर लेख लिखने की शीघ्रता कर दी। इन पंक्तियों के लेखक का उनके अन्तिम समय तक उनसे सम्बन्ध रहा। कभी समय मिला तो इन पर विस्तार से लिखा जावेगा। उनका आर्यसमाज से कितना सम्बन्ध रहा, यह लक्ष्मीचन्द जी को पता ही नहीं। वह कभी उदासी थे। आर्यसमाज का रंग उन पर कितना गहरा था? इस पर एक पंक्ति नहीं लिखी गई। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, श्री सिद्धान्ती जी, चौ. कुम्भाराम आर्य, लाल सुनाम राय जी जैसे आर्यों की चर्चा के बिना उनको कौन जान सकता है? इस छोटे से समाजसेवक का उनसे क्या सम्बन्ध था? पं. भीमसेन जी, पं. सन्तराम जी आदि हिन्दी सेवी आर्यों की स्वामी जी से अभिन्नता पर कुछ तो लिखना चाहिये था। स्वामी सत्यप्रकाश जी को उनसे मिलवाने हम संगरिया ले गये। डॉ. अशोक आर्य साथ ही थे।

स्वामी केशवानन्द जी को एक ओर ले जाकर कहा कि यह संन्यासी हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के जनक डॉ. सत्यप्रकाश जी हैं। आप पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के सुपुत्र हैं। यह सुनते ही स्वामी केशवानन्द जी भावुक होकर अपनी स्वाभाविक शैली में बहुत ऊँचे बोले, ''पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी के सुपुत्र को मैं इतनी जल्दी यहाँ से जाने नहीं दूँगा।'' आपने एक बार स्वामी सर्वानन्द जी को कहा, ''मैंने पहली बार १९१८ की काँग्रेस में दिल्ली स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के दर्शन किये थे।'' लोहारू में कुल्हाड़े के वार व लाठियों की अंधाधुंध मार के पश्चात् स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को संगरिया भी एक बार लेकर गये थे। उनकी संगरिया की संस्थाओं में कभी वैदिक संध्या नियमित

होती थी। पं. महेन्द्रप्रताप शास्त्री जी (दिल्ली वाले) छात्रावास सम्भालते थे। पं. कपिलदेव शास्त्री जी जैसे आर्यसमाजी उनका दायाँ हाथ थे। स्वामी सत्यप्रकाश जी के संन्यास से दो-चार दिन पूर्व श्री अशोक जी आदि ने हिन्दी की सेवा के लिये इस विनीत का सम्मान किया। सभा के अध्यक्ष श्री स्वामी केशवानन्द जी ही थे। आपने देश-सेवा, हिन्दी से समाज-सुधार के पाठ आर्यसमाज की गोदी में बैठकर ही सीखे थे। पुरुषार्थ उनके चरणों में लोटता था। कभी फिर विस्तार से उनके बारे में लिखा जावेगा।

कर्नाटक में भव्य समारोह- पं. लेखराम जी का बलिदान पर्व आ रहा है। उसी पावन पर्व पर हुमनाबाद कर्नाटक में ज़ालिम निज़ामी राज्य में तीन आर्यवीरों ने उस क्षेत्र के एक पूजनीय कर्मवीर पं. शिवचन्द्र जी के साथ एक ही दिन देश-धर्म की रक्षा करते हुये वीरगति पाई थी। उनके महाबलिदान पर हुमनाबाद में ७७ वर्ष पश्चात् भव्य समारोह होने जा रहा है। भारत भर के आर्यों को चार आर्यों के बलिदान के अमृत महोत्सव पर अपना कर्त्तव्य सोचना चाहिये। श्याम भाई और पं. नरेन्द्र जी के रणबाँकुरे जवानों को हैदराबाद सत्याग्रह के सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द के वीर सैनिक शिवचन्द्र को श्रद्धाञ्जलि देने हुमनाबाद जाने का कार्यक्रम बनाना होगा। पं. नरेन्द्र जी से मिशन की लोरियाँ लेकर शिवचन्द्र जी ने धर्म पर सर्वस्व वार दिया। इसी अवसर पर 'कर्नाटक में आर्यसमाज के इतिहास' पर इन पंक्तियों के लेखक द्वारा लिखे गये ग्रन्थ के कन्नड़ भाषा अनुवाद का बैंगलूर की बजाय अब वहीं विमोचन होगा।

पहले इस इतिहास का विमोचन बैंगलूर में होने वाला था। लेखक के ग्रन्थ 'रक्तरंजित है कहानी' के नये संस्करण का भी विमोचन वहाँ होगा। शिवचन्द्र जी, वेदप्रकाश जी, धर्मप्रकाश जी व श्याम भाई आदि की बलिदान गाथा भी इसमें है। शहीदों के लहू से लाल होने वाली हुमनाबाद की धरती पर हमारी उपस्थिति हमारे सौभाग्य की सूचक है। आर्यो! राजनीतिक दल तो श्याम भाई, पं. नरेन्द्र और धर्मप्रकाश शिवचन्द्र के उपकार व देन भूल गये, आप तो इस पाप के भागीदार मत बनना। सर्दी तो इधर भी नहीं होगी। इस आयु में वहाँ पहुँचने का लोभ मैं भी संवरण नहीं कर सकता। झूम-झूमकर कर्नाटक में यह गाते हुये पहुँचो-

गया ज़ालिमा का निज़ामी जमाना।
निज़ामी हकूमत बनी इक फ़साना।।
विजय पर्व वीरो मनाते चलेंगे...

आर्यसमाज के उर्दू साहित्य पर डी. लिट- महाकवि दुर्गा सहाय जी सुरूर पर गहन खोज करने वाले श्री डॉ. आलिफ़ नाज़िम जी, श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त, इन पंक्तियों के लेखक तथा 'परोपकारी' के कारण महाकवि दुर्गासहाय जी सुरूर की आर्यजगत् में पहचान व रुचि बढ़ रही है। 'सुरूर' की कोटि के आर्य कवि की रचनाओं का सम्पादन करके आप हिन्दी व उर्दू दोनों भाषाओं में दो खण्डों में छपवायेंगे। प्राक्कथन लिखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हो रहा है। लम्बे समय से उनको विस्मृति के गड्ढे से निकालने का हमारा प्रयास सफल हो गया। श्री जितेन्द्र जी द्वारा दिये व दिलाये गये आर्थिक सहयोग से आलिफ़ नाज़िम ने ठोस कार्य कर दिखाया है।

अब आप आर्यसमाज के उर्दू साहित्य पर डी. लिट. करने का मन बना चुके हैं। मान्य शरर जी, जावेद जी, पं. शान्तिप्रकाश जी, अमर स्वामी आज होते तो उन्हें कितना आनन्द होता? तो भी जीवन की साँझ में हमारे अरमान अभी जवान हैं। आर्यसमाज की शान के लिये जी-जान से इस कार्य में उनको सहयोग करने का वचन दिया है। महाशय कृष्ण जी, आनन्द स्वामी जी महाराज, पं. चमूपति जी, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के व्यक्तित्व, सेवाओं तथा देन के अनुरूप उर्दू साहित्य के इतिहास में डी. लिट्. के इस शोध प्रबन्ध में वह सब कुछ लाया जावेगा जो आना चाहिये।

विकास आर्य जी ने पूछा- अभय आर्य जी की मिशनरी मण्डली के एक आर्यवीर ने ऐतिहासिक, मार्मिक और जोशीले पद्य के विषय में पूछा है-

जुग बीत गया दीन की शमशीर ज़नी का।
है वक्त दयानन्द शजाअत के धनी का।।

यह पद्य विद्यार्थी जीवन में 'रिफॉर्मर' साप्ताहिक में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के एक लेख में पढ़ा। पं. चमूपति की यह पूरी रचना खोजकर छपवा दी। इसका भाव है मज़हब की मतान्धता, मारकाट का युग बीत गया। यह

महर्षि दयानन्द के सद्ज्ञान और शौर्य का युग है। विकास आर्य सरीखे वीरों को ऋषि की Philosophy (वीरोचित दर्शन) के लिये जीवन भेंट करना होगा।

यह अप्रामाणिक कथन है- किसी ने पूछा है कि क्या देश-विभाजन से पहले महाशय राजपाल जी के पश्चात् हुतात्मा नाथूराम तथा एक अन्य हुतात्मा ने रंगीला रसूल छपवाया था? लगता है कि दिल्ली में लोखण्डे जी ने हमें एक लघु पुस्तिका शहीदों पर दी थी, उसी को पढ़कर एक भाई ने यह प्रश्न पूछा है। हम से वह पुस्तिका तो कोई ले गया, परन्तु किसी के पास इस विषय में कोई प्रमाण हो तो देना चाहिये। हमारे भण्डार में वीर नाथूराम आदि के अभियोग व बलिदान के विस्तृत समाचार हैं। विरोधियों के लेख तथा पं. नरेन्द्र जी आदि के उसी समय लिखे गये लेख हैं। हम उस युग में आर्यसमाज में सक्रिय थे। यह सत्य नहीं। तथ्य नहीं। कोई इसे झुठलाने के लिये उस काल के किसी आर्य नेता का प्रमाण देगा तो हम अपनी सोच बदल लेंगे।

पं. भगवद्दत्त जी विषयक एक संस्मरण- किसी से कोई बात चली तो पं. भगवद्दत्त जी की एक घटना सुना दी। उन्हें अच्छी लगी तो तड़प-झड़प में देने का सुझाव मानकर यहीं दे रहे हैं। यह सन् १९५३ की घटना है। पण्डित जी पंजाब विश्वविद्यालय की सीनेट की बैठक में जालन्धर हमारे कॉलेज में आये। बैठक समाप्त हुई तो वह बाहर निकले। यह सेवक उन्हीं की प्रतीक्षा में खड़ा था। पहले से उनसे परिचय था। उनसे प्रार्थना की कि छात्रावास में मेरे मित्रों के संग आप भोजन करेंगे। झट से स्वीकृति दे दी।

तभी दीवान रत्नचन्द जी दाढ़ीवाला लाहौर (जिसने अपने बाग से पोपों के दबाव में ऋषि को निकाला था) के पुत्र दीवान आनन्द कुमार जी उपकुलपति ने पण्डित जी को भक्तिभाव से अपने साथ भोजन के लिये चलने को कहा। पण्डित जी ने संकेत करते हुये दृढ़ता व स्नेह से कहा, ''हमारा आर्यवीर हमें पहले निमन्त्रण दे चुका है। हम इसी के साथ जायेंगे।''

पण्डित जी भोजन से पूर्व हमारे कमरे में पहुँचे। हम सब उनके विचारों को सुनने लगे। किसी प्रसंग में इस विनीत ने कहा कि श्रावणी पर आर्यसमाज बाज़ार सीताराम में सुने आपके सब व्याख्यान प्रवचन आज भी याद हैं विशेष रूप से 'आयु को दीर्घ करने के उपाय।' ऐसा कहते ही उस व्याख्यान के सब मुख्य-मुख्य बिन्दु सुना दिये।

मुझे सचमुच सारा व्याख्यान स्मरण है यह देखकर पण्डित जी को आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी। तब पण्डित जी ने देश विभाजन से बहुत पहले की प्रि. दीवानचन्द्र जी के जीवन की एक रोचक कहानी सुनाई। सम्भवत: रावलपिण्डी या उस ओर के किसी बड़े समाज के उत्सव पर जाने के लिये ला. दीवानचन्द जी को कहीं गाड़ी बदलनी पड़ी। उनकी गाड़ी आई। वह एक डिब्बे में बैठ गये। लाला दीवानचन्द जी का एक भोला भक्त उन्हीं के आकर्षण से उनको सुनने उस उत्सव पर जा रहा था।

लाला जी को देखते ही उसी डिब्बे में उनके पास जा बैठा। अपना परिचय दिया तो बताया कि अमुक नगर में मैंने आपका एक व्याख्यान सुना था। यह कहकर वह सारा व्याख्यान सुना दिया। इस पर लाला दीवानचन्द जी ने कहा, ''अच्छा हुआ आप मुझे यहीं मिल गये। मैंने तो यहाँ वही व्याख्यान देना था। आप सुनकर फिर क्या सोचते?''

यह प्रसंग सुनकर पण्डित जी ने कहा, ''अच्छा हुआ मैं यहाँ भाषण देने नहीं आया था, यदि मैं यही व्याख्यान यहाँ दे देता तो आप क्या कहते कि मेरे पास एक ही व्याख्यान है।'' यह सुनकर मेरी मित्रमण्डली, पण्डित जी व मैं भी खूब हँसे। महापुरुषों के जीवन के ऐसे प्रसंग रोचक और बहुत शिक्षाप्रद होते हैं।

वेदसदन, अबोहर, पंजाब।

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना शिविर

दिनांक : १६ से २३ जून २०१९

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान–विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय **साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों–बाधकों** के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग–साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक–दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।
२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।
३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।
४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।
५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।
६. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे– समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।
७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा– खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।
८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।
९. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।
१०. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ– परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५–२४६०१६४) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने–ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक),

लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने-पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (०१४५-२६२१२७०) में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

email:psabhaa@gmail.com

संयोजक

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

मन्त्री

ऐतिहासिक कलम से....

वेद ही क्यों?

पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

संसार के सभी मत वाले अपने-अपने धर्म ग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान कहते हैं, तब प्रश्न उठता है कि वेद ही क्यों? इस प्रश्न का सुलझा उत्तर आर्यसमाज के उच्च कोटि के विद्वान्, वक्ता और पत्रकार लेखक की लेखनी से पढ़िए। -सम्पादक

इस प्रश्न को उपस्थित करने वाले दो प्रकार के वर्ग हैं। एक वर्ग को हम आस्तिक या धार्मिक लोगों का वर्ग कह सकते हैं और दूसरे वर्ग को नास्तिक या अधार्मिक लोगों का वर्ग।

जो नास्तिक या अधार्मिक लोग हैं वे तो ईश्वर या धर्ममात्र के विरोधी हैं। उनकी दृष्टि में सभी धर्मग्रन्थ त्याज्य हैं, इसलिए वे किसी भी धर्मग्रन्थ के गुणावगुण पर विचार करने को भी तैयार नहीं, परन्तु जो धार्मिक लोग हैं, वे भी नाना सम्प्रदायों और अनेक मत-मतान्तरों में बँटे हुए हैं और हरेक मतवादी अपने ही धर्मग्रन्थ को सर्वश्रेष्ठ मानता है। ऐसा मानना स्वाभाविक भी है। मतवादियों को अपने मत से मोह होता ही है। इस मोह के वशीभूत होकर यदि कोई अपने मत को अन्य मतों से तथा अपने धर्मग्रन्थ को अन्य धर्मग्रन्थों से उत्कृष्ट समझे तो इसे अनुचित कैसे कहा जाए? प्रत्येक माता को अपना पुत्र ही संसार में सबसे सुन्दर लगता है न!

विभिन्न मतवादी लोग अपने मत की उत्कृष्टता सिद्ध करने में इस सीमा तक आगे बढ़ गये हैं कि वे अपने धर्मग्रन्थ को ही ईश्वर-कृत मानते हैं और अपने धर्मग्रन्थ की भाषा को भी ईश्वरीय या दैवीय भाषा मानते हैं। प्राचीन यहूदी लोगों का विश्वास था कि परमात्मा को केवल हिब्रू भाषा ही आती है, उसी हिब्रू भाषा में उसने संसार को धर्म का उपदेश दिया। जैनी लोग चिरकाल तक यह मानते रहे हैं कि तीर्थंकरों की भाषा केवल मागधी थी। यही दिव्य भाषा है इसलिए उसी में उपदेश दिया गया है। यहाँ तक कि उनके विश्वास के अनुसार संसार भर के पशु-पक्षी भी मागधी भाषा ही जानते हैं।

अधार्मिक या नास्तिक लोगों की बात फिलहाल छोड़ दें। उनकी आवाज में जितना कोलाहल का जोर है उतना तर्कों का औचित्य नहीं। नास्तिकता एक फैशन बन गया है और फैशन तर्कातीत होता है, परन्तु जो आस्तिक हैं और धार्मिक हैं, उनमें भी परस्पर इतने मतभेद हैं कि बहुत बार इनकी परस्पर सिर फुटव्वल देखकर यही मन में आता है कि इनसे तो नास्तिक ही अच्छे!

परन्तु नास्तिकता से भी मनुष्य की बुद्धि को सन्तोष नहीं होता। वह ऊहापोह करती ही रहती है। मनुष्य के मन में मोह का समावेश भी होता ही रहता है-परन्तु उस मोह के कारण क्या वह इतना अन्धा हो जाए कि सत्य और असत्य तथा न्याय और अन्याय में विवेक करना भी छोड़ दे!

तो फिर सत्य को पहचानने का उपाय क्या है? हरेक धर्मावलम्बी अपने धर्मग्रन्थ के ही सर्वश्रेष्ठ होने का दावा करे तो उन दावों की परीक्षा कैसे की जाए?

एक अचूक उपाय

इसका उपाय बड़ा सरल है। कोई भी इतिहास का विद्यार्थी यदि अपनी आँखों पर से पक्षपात की ऐनक उतार कर संसार भर के धर्मग्रन्थों का अध्ययन करे तो वह एक बात देखकर चकित रह जाएगा। उसे उन सब धर्मग्रन्थों की कुछ बातों में परस्पर समानता प्रतीत होगी। (यहाँ यह कहने का हमारा अभिप्राय नहीं है कि सब धर्मग्रन्थों में सब बातें समान हैं। परस्पर विरोध भी है, भयंकर विरोध है। पर कुछ बातें मिलती-जुलती अवश्य हैं-इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता।) यह समानता मानव-बुद्धि की समान चिन्तन-प्रणाली की द्योतक हैं। यदि ऐसी बात न होती तो अच्छी बात को सारा संसार अच्छा और बुरी बात को सारा संसार बुरा न कहता। न्याय और अन्याय की कसौटी भी नहीं रहती।

सहज और सरल उपाय यही है कि सब धर्मग्रन्थों में

जितनी बातें समान हैं उन्हें एकत्र कर लीजिए और जिन बातों में परस्पर विरोध है, उन्हें छोड़ दीजिए। सब धर्मग्रन्थों की परस्पर समान बातें ही धर्म हैं, ग्राह्य हैं, आदेय हैं और परस्पर-विरुद्ध बातें अधर्म हैं, अग्राह्य हैं और हेय हैं।

स्वभावत: प्रश्न होगा कि वेद ही क्यों-इस प्रश्न के साथ उक्त कथन की क्या संगति है? उत्तर से पहले हम पूछते हैं कि विभिन्न धर्मग्रन्थों से चुन-चुनकर जो परस्पर समान बातें आपने एकत्र की हैं- जिन्हें धर्म का शुद्ध स्वरूप कहा जा सकता है, उन सबका मूल आधार क्या है?

क्या कुरान? क्या पुराण? क्या बाइबिल! क्या जेंद अवस्ता? क्या त्रिपिटक? क्या कोई अन्य धर्मग्रन्थ?

उत्तर में वितण्डा की आवश्यकता नहीं। यह सीधा इतिहास का प्रश्न है। इतिहास की शरण लीजिए और सही उत्तर को खोजिए।

संसार के समस्त इतिहासज्ञ जानते हैं कि अब से लगभग १४०० (१४४७) वर्ष पहले हजरत मुहम्मद साहब इस संसार में नहीं थे। जब इस्लाम के पैगम्बर ही नहीं थे तो उनके पैरोकार कहाँ से होते? कहाँ से होती उनकी कुरान? स्पष्ट है कि अबसे लगभग १४०० (१४४७) साल पहले इस दुनियाँ में हजरत मुहम्मद साहब, कुरान शरीफ और इस्लाम का नाम लेने वाला कोई नहीं था, उनका अस्तित्व नहीं था।

फिर रही बाइबिल। बाइबिल को अधिक से अधिक १९६६ (अब २०१९) साल पुराना माना जा सकता है क्योंकि ईसा के साथ सम्बद्ध ईस्वी सन् इससे आगे बढ़ने की अनुमति नहीं देता। यद्यपि सत्य तो यह है कि बाइबिल का कोई भी भाग ईसा के समय नहीं बना था, वह उनके शिष्यों की कृति है, ठीक वैसे ही जैसे कि त्रिपिटक महात्मा बुद्ध की नहीं प्रत्युत उनके शिष्यों की कृति है। जो भी हो, बाइबिल का या न्यू टेस्टामेन्ट का समय और पीछे नहीं ले जाया जा सकता। जब १९६६ (अब २०१९) वर्ष पहले हजरत ईसामसीह ही नहीं थे तो ख्रीस्ती धर्म या उनका धर्मग्रन्थ बाइबिल भी कहाँ से होता।

तो क्या यहूदियों का धर्मग्रन्थ 'तनख' उस समानता का आधार है? परन्तु यहूदियों के पैगम्बर हजरत मूसा का काल ३५०० वर्ष से अधिक पीछे नहीं जा सकता। स्वयं यहूदी भी वैसा ही मानते हैं। जब हजरत मूसा का ही प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, तब यहूदी मत के प्रादुर्भाव का प्रश्न ही नहीं। इसलिए यह निर्विवाद है कि अब से लगभग ३५०० वर्ष पहले संसार में यहूदी मत का अस्तित्व नहीं था।

क्या जेंदा अवस्ता-पारसियों का धर्मग्रन्थ-उसका आधार है? पारसी मत के प्रवर्तक हजरत जरदुश्त का समय अब से ३८०० वर्ष पूर्व माना जाता है। कुछ विद्वान् हजरत मूसा और हजरत जरदुश्त की समकालीनता, परस्पर भेंट, कुछ काल तक एक ही शहर में निवास और परस्पर विचारों के विनिमय की बात को सर्वथा प्रामाणिक नहीं मानते और वे हजरत जरदुश्त का समय खींच कर ४१०० साल पहले तक ले जाते हैं, परन्तु इसके आगे उनकी भी गति नहीं है। कहने का भाव यह है कि हजरत जरदुश्त और उनके द्वारा प्रचलित पारसी मत तथा उनके धर्मग्रन्थ को किसी भी हालत में ४१०० वर्ष से अधिक पुराना सिद्ध नहीं किया जा सकता।

भारतीय मत

जहाँ तक भारत में प्रचलित मतों का प्रश्न है-उनमें बौद्ध और जैन मत प्रमुख हैं, जिनको वैदिक परम्परा से भिन्न परम्परा में गिना जा सकता है। शैव, शाक्त या वैष्णव आदि सम्प्रदाय तथा उनकी अनेकानेक शाखाएँ वैदिक परम्परा के ही अंग हैं- उनमें विकार चाहे कितना ही आ गया हो, किन्तु इन सम्प्रदायों ने वेद के प्रामाण्य का खण्डन करने का कभी साहस नहीं किया। कबीरपन्थ, नानकपन्थ अर्थात्-सिख मत या राधास्वामी मत आदि मत इतने अर्वाचीन हैं कि प्राचीनों की सभा में इन अर्वाचीनों का प्रवेश समीचीन नहीं प्रतीत होता। ब्रह्माकुमारी आदि सम्प्रदाय तो विशुद्ध गुरुडम की उपज हैं-ये भारतभूमि की उस उर्वरा शक्ति के द्योतक हैं जिसके कारण हर बरसात में जगह-जगह खुम्बियाँ या अन्य झाड़-झँखाड़ स्वत: उग आते हैं और किसी भी कुशल किसान को अपनी अनाज की फसल बोने से पहले खेत से उन्हें साफ करना ही पड़ता है। प्राचीनों की सभा में इन झाड़-झंखाड़ों का प्रवेश तो क्या, उन्हें दौवारिक की योग्यता का पात्र भी नहीं समझा

जा सकता।

महात्मा बुद्ध का समय प्रायः सभी इतिहासकारों की दृष्टि में ईसा से लगभग ४०० वर्ष पूर्व माना जाता है। इस प्रकार उनका समय हुआ- १९६६ (२०१९)+४००= २३६६ वर्ष पूर्व (अब के अनुसार २४१९)। स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि महात्मा बुद्ध का समय अबसे लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व है अर्थात् ढाई हजार वर्ष से पहले महात्मा बुद्ध या बौद्ध मत की कल्पना नहीं की जा सकती।

रहा जैन मत। यदि जैन मत का प्रवर्तक महावीर स्वामी को माना जाए तो वर्धमान महावीर और गौतम बुद्ध दोनों समकालीन थे, उनकी परस्पर भेंट भी हुई, दोनों ही राजकुमार थे और दोनों ने अपने समय की राजनीति को भी काफी प्रभावित किया था। यदि राजनीतिक दृष्टि से तत्कालीन इतिहास का अध्ययन किया जाए-जिसकी कि परम्परा अपने देश में बहुत कम है, तो कदाचित् वैशाली को अपना कार्यक्षेत्र बनाने वाले इन दोनों महात्माओं की सामन्तोचित कूटनीतियों के परस्पर घात-प्रतिघात का भी आकलन किया जा सके। पर वह विषयान्तर है। कहने का भाव केवल यह है कि वर्धमान महावीर और शाक्यपुत्र गौतम के समकालीन होने के कारण जैन धर्म को भी बौद्ध धर्म का समकालीन अर्थात् ढाई हजार वर्ष पुराना ही माना जा सकता है।

परन्तु आजकल के जैनियों की प्रवृत्ति अपने मत को इससे बहुत प्राचीन सिद्ध करने की है। वे वेद के अन्दर भी अपने तीर्थंकरों का वर्णन खोजते हैं। परन्तु जैसे ''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्''- इस मन्त्रखण्ड के आधार पर वेद में हजरत ईसामसीह का उल्लेख सिद्ध करना उपहासास्पद है या ''पश्येम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्''- इस मन्त्रखण्ड में मक्का मदीना का उल्लेख सिद्ध करना उपहासास्पद है, वैसा ही उपहासास्पद है ''त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति'' और ''घनाघनः क्षोभणश्चषणीनाम्''- आदि मन्त्रखण्डों में से भगवान् ऋषभदेव का वर्णन निकालना, परन्तु यहाँ हम इस विवाद में नहीं पड़ते। यदि जैनी लोग अपने मत को ढाई हजार वर्ष पुराना नहीं उससे अधिक पुराना मानते हैं, तो मानें। उससे हमारे युक्तिक्रम में कोई अन्तर नहीं आता। अपने मतप्रवर्तक और मत के प्रादुर्भाव की जो भी तिथि वे निर्धारित करना चाहें करें। इतना निश्चित है कि इतिहास में उन्हें ऐसा काल-निर्धारण अवश्य करना पड़ेगा जब उनके मत-प्रवर्तक या मत का अस्तित्व संसार में नहीं था और उसके बाद वे अस्तित्व में आए।

युक्ति का आधार

हमारे युक्तिक्रम का आधार यह है कि संसार के ये जितने मतमतान्तर हैं और जितने उनके धर्मग्रन्थ हैं, वे भले ही अपने आप में ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा करें, परन्तु वे ईश्वरीय नहीं, मानवकृत हैं। इन मतों के विशिष्ट पैगम्बर हैं, उन पैगम्बरों की विशिष्ट जन्मतिथियाँ हैं, उन धर्मग्रन्थों के तैयार होने का विशिष्ट समय है। इतिहास इसका साक्षी है। इतिहास के इन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सकता और इन धर्मग्रन्थों में कुछ बातों में समानता है, यह भी निर्विवाद है। उदाहरणार्थ-मनुस्मृति के अनुसार धृति, क्षमा, अस्तेय, इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध आदि जिन तत्त्वों को धर्म का लक्षण बताया गया है, क्या ईसा का गिरि-प्रवचन (सर्मन ऑन द माउण्ट), मूसा के दस आदेश (टैन कमाण्डमेंट्स) और महात्मा बुद्ध द्वारा वर्णित अष्टांगिक मार्ग या आर्य सत्य तथा कुरान द्वारा वर्णित सच्चे मुसलमानों के रोजा, जकात आदि कर्त्तव्यों में कोई विशेष अन्तर है? योगदर्शन में

''तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'' और

''शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः''

कहकर जिन यमों और नियमों का उल्लेख किया गया है, वे प्रकारान्तर से सार्वत्रिक नियम हैं और संसार के सभी धर्मों में इन गुणों को समान रूप से आदर की दृष्टि से देखा गया है। अन्तर है तो सामाजिक विधि-विधानों में, सृष्टिरचना की प्रक्रिया के वर्णन में या मतवादी साम्प्रदायिक मान्यताओं में। इसी कारण महात्मा गाँधी कहा करते थे कि किसी धर्मात्मा हिन्दू में, या धर्मात्मा मुसलमान में या धर्मात्मा ईसाई में जीवन की पवित्रता की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं

होता। कोई धर्म ऐसा नहीं हो सकता जो सत्य, अहिंसा, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को धर्म का अंग न माने, उन्हें अधर्म बताए।

हमारी स्थापना यह है कि धर्मग्रन्थों में पाई जाने वाली समानताओं का आधार (प्रत्युत कहना चाहिए कि असमानताओं का आधार भी, क्योंकि असमानताएँ भी बहुत बार किन्हीं समानताओं का विकृत रूप ही होती हैं) वेद हैं, क्योंकि समस्त उपलब्ध धर्मग्रन्थों में वेद सबसे प्राचीन है। मैक्समूलर ने जब यह कहा था: ''वेद हमारे लिए मनुष्य-बुद्धि के सबसे पुराने परिच्छेद के परिचायक हैं''- तब से आज तक इस उक्ति का खण्डन नहीं किया जा सका, प्रत्युत दिन-प्रतिदिन इसी बात की पुष्टि होती गई कि संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन पुस्तक 'वेद' है।

विशुद्ध तर्क की खातिर यह भी कहा जा सकता है कि यदि किसी दिन पुरातत्त्वान्वेषियों को कहीं किसी अज्ञात स्थान की खुदाई में से कोई ऐसा ग्रन्थ मिल जाए जो वेदों से अधिक प्राचीन सिद्ध हो सके और इस ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय वेदों से ही मेल खाता हो, तो तर्कप्रवण वेदाभिमानियों को यह मानने में संकोच नहीं करना चाहिए कि वेद का आधार वह नव-उपलब्ध ग्रन्थ होगा, परन्तु जब तक संसार के विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं-तब तक यह निष्कर्ष निकालना सर्वथा तर्कसंगत है कि इन सब समानताओं का आधार वेद है, क्योंकि वही सबसे प्राचीन है।

वेदों का निर्माण-काल

पूछा जा सकता है कि वेदों का निर्माण काल क्या है? हम स्वीकार करते हैं कि इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं, परन्तु एक बात असंदिग्ध रूप से कही जा सकती है और वह यह कि ज्यों-ज्यों अनुसन्धान की गहराई बढ़ती जाती है त्यों-त्यों वेद का समय लगातार पीछे ही पीछे खिसकता जाता है। विषय के संक्षिप्त निदर्शन के लिए हम यहाँ एक तालिका दे रहे हैं, जिससे बात और स्पष्ट हो जाएगी।

वेदों का अनुमानिक काल

नाम	कम से कम	अधिक से अधिक
मैक्समूलर	८०० वर्ष ई.पू.	१,५०० वर्ष ई.पू.
मैक्डॉनल्ड	१००० वर्ष ई.पू.	२,००० वर्ष ई.पू.
हॉग	१,४०० वर्ष ई.पू.	२,००० वर्ष ई.पू.
विटसन	१,५०० वर्ष ई.पू.	२,००० वर्ष ई.पू.
ग्रिफिथ	१,५०० वर्ष ई.पू.	२,००० वर्ष ई.पू.
ह्विटनी	१,५०० वर्ष ई.पू.	२,००० वर्ष ई.पू.
जैकोबी	१,५०० वर्ष ई.पू.	४,००० वर्ष ई.पू.
तिलक	१,५०० वर्ष ई.पू.	८,००० वर्ष ई.पू.

इसका अभिप्राय यह है कि पाश्चात्य विद्वान् वेदों का काल अधिक से अधिक अब से ६,००० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं, जबकि लोकमान्य तिलक इस समय को १०,००० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं। अन्य भारतीय विद्वान् इस काल को दस हजार वर्ष से और बहुत पीछे तक ले जाते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों के सामने कदाचित् वेदों के काल को ६,००० वर्ष से अधिक पीछे ले जाने में मानसिक बाधा है। मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर इस मानसिक बाधा को पहचानने में देर नहीं लगती। वह मानसिक बाधा यह है कि बाइबिल के संकेत के अनुसार उनके मन में यह संस्कार बैठा हुआ है कि वर्तमान सृष्टि को बने केवल ६,००० साल हुए हैं। उनके आन्तरिक मन्तव्य के अनुसार जब ६,००० साल पहले सृष्टि ही नहीं थी तो कोई ग्रन्थ इससे पहले कैसे हो सकता है? वास्तव में तो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किसी चीज को ६,००० साल पूर्व का कहने का अभिप्राय भी 'सृष्टि के आदि का' समझना चाहिए, क्योंकि उनकी दृष्टि में ६,००० वर्ष पूर्व ही सृष्टि का प्रारम्भ है, परन्तु विज्ञान की खोज ने बाइबिल द्वारा वर्णित सृष्टि के आगाज को मिथ्या सिद्ध कर दिया है और जब से रेडियम का आविष्कार हुआ है तब से वैज्ञानिकों को इस बात का निश्चय हो गया है कि सृष्टि को बने करोड़ों (लगभग दो अरब) वर्ष हो गए हैं, क्योंकि इससे कम अवधि में कार्बन रेडियम में रूपान्तरित नहीं हो सकता।

और क्या वेदों के निर्माण की अभी तक कोई तिथि निर्धारित न होना स्वयं इस बात की निशानी नहीं है कि

यह सृष्टि के आदि की रचना है? परन्तु वेद को सृष्टि की आदि-रचना मानना भी हमारे युक्ति-क्रम का ऐसा अंग नहीं है कि इसके बिना हमारी स्थापना विशृंखलित हो जाएगी। संसार के लोग वेद को सृष्टि की आदि-रचना मानें या न मानें, जब तक सब यह मानते हैं कि वेद संसार के पुस्तकालय का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है तब तक हमारे युक्तिक्रम का प्रासाद अक्षुण्ण है। संसार का कोई धर्मग्रन्थ प्राचीनता में वेद की तुलना में खड़ा नहीं हो सकता। आर्यजाति के प्रारम्भ के साथ वेद प्रारम्भ हुआ, यदि किसी को इस स्थापना की स्वीकार करने में संकोच हो तो भी उसे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि संसार के धर्मरूपी भवन की पहली ईंट वेद है।

अन्तः साक्षी का महत्त्व

आश्चर्य की बात यह है कि वेद के सिवाय संसार के किसी अन्य धर्मग्रन्थ ने सृष्टि के आदि में होने का दावा नहीं किया। करें भी कैसे? विभिन्न धर्मावलम्बी अपने धर्मग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान तो सहज ही मान लेते हैं, परन्तु सृष्टि के आदि में अपने धर्मग्रन्थों की सत्ता सिद्ध करने की उनकी हिम्मत नहीं होती। सृष्टि के आदि में न होने पर भी अपने धर्मग्रन्थ को ईश्वरीय ज्ञान मानना परस्पर विरोधी बात ठहरती है। क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान वही हो सकता हैं जो सृष्टि के आदि में हो। जिस परमात्मा ने मनुष्य को आँख दी है उसी ने सूर्य भी दिया है। सूर्य या सूर्य के प्रतिनिधि के बिना आँख देख नहीं सकती। यदि केवल आँख ही परमात्मा ने दी होती, सूर्य नहीं, तो आँख देना भी व्यर्थ था, क्योंकि प्रकाश के अभाव में आँख देखने का काम नहीं कर सकती थी। इसी प्रकार परमात्मा ने मनुष्य को अन्दर की आँख या बुद्धि दी तो उसकी सार्थकता के लिए वेद रूपी ज्ञान का सूर्य भी दिया, अन्यथा बुद्धि का दान व्यर्थ हो जाता। फिर सृष्टि बनने के हजारों साल बाद बनने वाले धर्मग्रन्थों में ही यदि ईश्वरीय ज्ञान प्रकट होना था तो उन धर्मग्रन्थों के प्रादुर्भाव से पहले मनुष्य जाति की जो सैंकड़ों पीढ़ियाँ गुज़र चुकीं उनको ईश्वर ने ईश्वरीय ज्ञान से वंचित क्यों रखा? वेद को छोड़कर किसी अन्य धर्मग्रन्थ को ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले व्यक्ति के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं हो सकता। ऐसा परमात्मा पक्षपाती सिद्ध होता है, अन्यायी भी, निर्दयी भी। ईश्वर को ऐसे आरोपों से बचाने का एक ही उपाय है कि मानवकृत ग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान की कोटि में न रखा जाए।

वेद के सृष्टि के आदि में होने की अन्तः साक्षी स्वयं वेद देता है। ऋग्वेद (१०.९०.९) में मन्त्र आता है,

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

यह मन्त्र यजुर्वेद (३१,७) में भी आया है। भावार्थ है- ''उसी सर्वपूज्य परमात्मा से ऋग्, साम, अथर्व और यजुर्वेद उत्पन्न हुए।''

अथर्ववेद (१०.२३.४,२०) में मन्त्र आता है-

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्दिेव सः।

-''जिस जगदाधार परमात्मा से ऋग्, यजु, साम और अथर्व उत्पन्न हुए उसका यथार्थ स्वरूप बताओ।''

अब तक हमने जो कुछ कहा है उसका सार यह है : संसार के धर्मग्रन्थों में कुछ बातों में समानता पायी जाती है। उस समानता का कोई एक आधार होना चाहिए। वह आधार वेद ही हो सकता है क्योंकि वही सबसे प्राचीन है। इतना ही नहीं, ईश्वरीय ज्ञान के दावे की कसौटी को भी वेद ही पूरा कर सकता है, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान की एक कसौटी है-सृष्टि के आदि में होना और यह शर्त सिवाय वेद के और कोई धर्मग्रन्थ पूर्ण नहीं कर सकता।

नास्तिकों के लिए भी उपयोगी

यह समस्त विवेचन केवल आस्तिक और धार्मिक लोगों की दृष्टि से किया गया है। जो धर्म को मनुष्य जाति के लिए अफीम बताते हैं उनकी किसी भी धर्मग्रन्थ में आस्था नहीं। ईश्वर में ही आस्था नहीं तो धर्म या धर्मग्रन्थ को लेकर क्या होगा?

परन्तु अब हम कहते हैं कि वेद नास्तिकों और धर्म-विरोधियों के लिए भी उतना ही उपयोगी है जितना धर्मप्रेमियों के लिए। नास्तिक लोग भी विज्ञान और विज्ञानेतर विषयों की पुस्तकें तो पढ़ते ही हैं। हम कहते हैं कि वेद केवल धर्मग्रन्थ नहीं है, वह विज्ञान और विज्ञानेतर विषयों का भी अगाध भण्डार हैं। वह समस्त सत्य विद्याओं का आगार

है। मानव-जीवन के लिए जो भी कुछ उपयोगी है, उस सबका निदर्शन वेद के अन्दर है। अन्य धर्मग्रन्थों में से उन मतों के प्रवर्तकों का जीवन-वृत्त निकाल दीजिए, उन महान् पुरुषों के जीवन के साथ दन्तकथाओं के रूप में जुड़े आख्यानों को निकाल दीजिए, सामाजिक विधि-विधानों के सम्बन्ध में देश-काल और परिस्थिति के अनुसार दी गई व्यवस्थाओं को निकाल दीजिए, तो आप देखेंगे कि उन धर्मग्रन्थों में इसके बाद जो कुछ बचता है वह नगण्य है या ऐसा कुछ है जिसे उससे पूर्ववर्ती धर्मग्रन्थ कह चुके हैं। धर्मग्रन्थों की इन्हीं व्यक्तिवादिताओं और दुर्बलताओं को देखकर तो अधर्मियों को उनसे अश्रद्धा हुई है, परन्तु वेद में किसी व्यक्ति विशेष का, देश-विशेष का या काल-विशेष का इतिहास नहीं, वहाँ तो शाश्वत इतिहास है। अन्य मत-मतान्तरों में से उन मतों के प्रर्वतकों को निकाल दें तो वे मत धराशायी हो जाते हैं क्योंकि वे अपने पैगम्बरों के बिना नहीं टिक सकते, परन्तु वेद के साथ ऐसी बात नहीं। किसी भी व्यक्ति पर आधारित नहीं है। वेद समस्त मनुष्य जाति के लिए है। सच तो यह है कि वेद व्यक्तिपरक है ही नहीं, वह तो ज्ञानपरक ही है। वेद शब्द का अर्थ भी सिवाय ज्ञान के और कुछ नहीं है। सांसारिक ज्ञान की पुस्तकों में केवल ऐहिक ज्ञान का विवेचन होगा, परन्तु वेद में ऐहिक के साथ पारलौकिक ज्ञान, भौतिक के साथ आध्यात्मिक ज्ञान और अभ्युदय के साथ नि:श्रेयस का भी विवेचन है।

यदि मानव जीवन के लिए वेद की इतनी उपयोगिता न होती तो भारत के ब्राह्मणों ने अपने प्राण देकर भी उनकी रक्षा का प्रयत्न न किया होता, वेदों को कण्ठाग्र करना अपने जीवन का लक्ष्य न बनाया होता और **''ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येय:''** के निमय के अनुसार बिना किसी भौतिक लाभ की आशा के वेदों के पठन-पाठन में ही अपना समस्त जीवन न लगाया होता। न ही चतुर्वेदी, त्रिवेदी या द्विवेदी की वंशपरम्परा चली होती। न ही भारतवर्ष ने अतीतकाल में ज्ञान-विज्ञान में इतनी उन्नति की होती। न ही आज देश-विदेश के विद्वानों ने इतनी बड़ी संख्या में वेद के स्वाध्याय में अपना जीवन खपाया होता।

जैसे हिमालय का सर्वोच्च शिखर मानवात्मा को चुनौती देता है, जैसे महासागर की गहराइयाँ वैज्ञानिकों का आह्वान करती हैं, जैसे मंगल और चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रह किसी साहसी अन्तरिक्ष-यात्री की प्रतीक्षा करते हैं और मानव की चिर-जिज्ञासु आत्मा उस चुनौती को स्वीकार कर अज्ञात के अनन्त रहस्यों को खोजने के लिए अपने विजय-पथ पर निकल पड़ती है, वैसे ही क्या ज्ञान का यह सर्वोच्च शिखर, ज्ञान का यह महासागर, ज्ञान का यह सूर्य-वेद भी मानव की बुद्धि और परिश्रम के लिए चुनौती नहीं है? किसी नास्तिक के लिए भी इस अज्ञात को सुज्ञात बना देने से बढ़कर जीवन की कृतकार्यता और क्या हो सकती है? ज्ञान का भण्डार वेद ज्ञान के नए आयाम अपने पक्ष में छिपाए साहसी व्यक्तियों की प्रतीक्षा में है।

आर्योदय 'हिन्दी साप्ताहिक' के वेदांक से साभार।

पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिए नियम

यथार्थ आचरण से पढ़े और पढ़ावें, सत्याचार से सत्य विद्याओं को पढ़ें वा पढ़ावें, तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादिशास्त्रों को पढ़े और पढ़ावें, बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें, मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटाके पढ़ते-पढ़ाते जावें, आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जाने के पढ़ते-पढ़ातें जायें और अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावे। अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें, मनुष्यसंबंधी व्यवहारों को यथायोग्य (करते हुए) पढ़ते-पढ़ाते रहें, सन्तान और राज्य का पालन करते हुये पढ़ते-पढ़ाते जावें, वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुवे पढ़ते-पढ़ाते जावें। अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुये पढ़ते-पढ़ाते जायें।

(स. प्र. तृ. ३ स.)

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)-प्रथम खण्ड

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ४५०/- **पृष्ठ**- ४०८

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अवैदिक मान्यताओं के खण्डन एवं वैदिक विचारधारा की प्रतिष्ठा के लिये लेखन और उपदेश दोनों ही विधाओं का भरपूर उपयोग किया। उनके बलिदान के पश्चात् उनके जिन शिष्यों ने इस कार्य को गति दी, उनमें पण्डित लेखराम का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। पण्डित जी की उपस्थिति का आभास मात्र ही विरोधियों के अन्तस् को कँपाने के लिये पर्याप्त होता था। उस मनीषी के मौखिक उपदेश तो संग्रहित नहीं हो पाये, परन्तु उनकी धारदार लेखनी से निकले वाक्य हमारे पास आज भी विद्यमान हैं, जिन्हें ''कुल्लियाते आर्यमुसाफिर'' के नाम से जाना जाता है। परोपकारिणी सभा द्वारा इसका यह प्रथम खण्ड प्रकाशित किया गया है। दूसरा प्रकाशनाधीन है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जो कि कई भाषाओं के ज्ञाता हैं, उन्होंने इसका कुशल सम्पादन किया है।

२. अष्टाध्यायी भाष्य- भाग २

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रुपये **पृष्ठ**- ४१४

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक सिद्धान्तों, कर्मकाण्ड, वेदभाष्य आदि के साथ-साथ संस्कृत व्याकरण पर भी पर्याप्त साहित्य का निर्माण किया है। १४ खण्डों में प्रकाशित वेदांग-प्रकाश के साथ-साथ अष्टाध्यायी ग्रन्थ के चार अध्यायों तक का भाष्य भी किया। यह भाष्य तीन खण्डों में परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किया गया, परन्तु इसका द्वितीय भाग समाप्त होने से यह अपूर्ण हो गया था। अब इसका दूसरा भाग भी छप चुका है, जिससे यह सम्पूर्ण रूप में व्याकरण के अध्येताओं को सुलभ हो गया है।

३. संस्कृत वाक्य प्रबोध

लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- ५०रुपये **पृष्ठ**- ११६

स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कृत को व्यावहारिक भाषा बनाना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने यह 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में दैनिकचर्या में प्राय: प्रयोग होने वाले वाक्यों का संकलन है। ये वाक्य ५२ अलग-अलग प्रकरणों में विभाजित हैं, यथा-गुरुशिष्य वार्तालाप प्रकरण, गृहाश्रम प्रकरण, नामनिवास-स्थान प्रकरण आदि। घर में बच्चों को संस्कृत सम्भाषण का ज्ञान कराने के लिये यह पुस्तक महर्षि द्वारा प्रदत्त उपहार है। छपाई एवं आवरण सौन्दर्य की दृष्टि से भी पुस्तक अत्यन्त आकर्षक है।

४. शङ्का-समाधान

लेखक- डॉ. वेदपाल (प्रधान, परोपकारिणी सभा)

मूल्य- ७०/- रुपये **पृष्ठ**- १४०

परोपकारी पत्रिका कई वर्षों से निरन्तर शङ्का-समाधान की परम्परा चलाये हुए है, जिसके कि आर्यजगत् में बहुत ही सार्थक परिणाम हुए हैं। धर्म, दर्शन, सिद्धान्त, व्याकरण आदि विषयों पर आये प्रश्नों के सभी समाधान परोपकारी के अलग-अलग अंकों में होने कारण पाठकों को एक साथ उपलब्ध नहीं हो पाते थे। इन सबकी उपयोगिता एवं पाठकों की माँग को देखते हुए इन सबको पुस्तक का रूप दिया गया है। समाधानकर्ता डॉ. वेदपाल आर्यजगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं, उनके शास्त्रीय ज्ञान से भरी यह पुस्तक सभा की ओर से स्वाध्यायशील आर्यों को सादर समर्पित है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

-संपादक

शङ्का समाधान - ४३

डॉ. वेदपाल

शङ्का- ध्यान और तपस्या एक है या अन्तर है?

-राम शर्मा, भोपाल

समाधान- ध्यै चिन्तायाम्(भ्वादि.) धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर 'ध्यान' शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है-मनन, विमर्श, विचार, चिन्तन, विशेष रूप से सूक्ष्म चिन्तन, धार्मिक मनन (द्रष्टव्य-आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. ५०२)

तप शब्द तप् पूर्वक अच् प्रत्ययान्त है। तपस्या शब्द भी इसी तप के अर्थ में प्रयुक्त होता है। **तप धातु (तप सन्तापे. भ्वादि; तप ऐश्वर्ये वा-दिवादि.; तप दाहे-चुरादि.)** के अर्थ हैं-सन्तप्त करने वाला, जलाने वाला, तपाने वाला, धार्मिक कड़ी साधना, तपश्चरण (द्रष्टव्य-आप्टे सं. हि. कोश, पृ. ४२१)

मनुष्यमात्र दु:ख से छूटना चाहता है। दु:ख से छूटने के उपाय दर्शन शास्त्र प्रतिपादित करते हैं। इनमें भी विशेषेण योगदर्शन दु:ख से छूटकर पुरुष के स्वरूप प्रतिष्ठ होने की विधि किंवा साधन का प्रतिपादन करता है। यही साधन योग के अंग कहलाते हैं। संख्या में आठ होने के कारण योग को अष्टांग योग भी कहा जाता है। ये हैं- १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. **ध्यान** ८. समाधि। इनमें सातवें स्थान पर '**ध्यान**' तथा द्वितीय स्थानी नियमान्तर्गत (**'शौचसन्तोषतप:स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा:'** योगदर्शन २.३२) '**तप**' का वर्णन है। महत्त्व की दृष्टि से '**तप**' बहिरंग है तथा '**ध्यान**' अन्तरंग।

'शौच...नियमा:' २.३२ के व्यास भाष्य में तप को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है- **'तपो द्वन्द्वसहनम्। द्वन्द्वश्च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च'**- अर्थात् द्वन्द्व का सहन करना तप है। द्वन्द्व हैं- बुभुक्षा (भूख)-प्यास, शीत-ऊष्ण, खड़े रहने-बैठने का अभ्यास और काष्ठमौन (इंगित-इशारे से भी अपने अभिप्राय को प्रकट न करना) आकार-मौन-(अवचनमात्र मौन)। इन दोनों परिस्थितियों में समभाव से रहना (यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से यह अति कठिन है।) तप है।

योगदर्शन साधनपाद के प्रथम सूत्र- **'तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग:'** के भाष्य में व्यास का कथन है कि- **'नातपस्विनो योग: सिध्यति'** जो साधक तपस्वी नहीं है, उसे योग सिद्ध नहीं होता है।

ध्यान- ध्यान शब्द का अर्थ है चिन्तन करना। पतञ्जलि का कथन है कि- **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'**- यो. द. ३.२१ पूर्व सूत्र से धारणा की अनुवृत्ति है। अत: सूत्रार्थ है- उस धारणा (चित्त का किसी एक देश- नाभि चक्र, नासिकाग्र, भ्रूमध्य आदि में स्थिर करना) में प्रत्यय= ज्ञान का एक सा बना रहना ध्यान है।

सूत्र का व्यास-भाष्य है- **''तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृश: प्रवाह: प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।''** अर्थात् उन देशों (नाभिचक्र आदि) में ध्येय आत्मा और चित्त की एकतानता अर्थात् परस्पर दोनों की एकता, जिसमें चित्त चेतन आत्मा से ही युक्त रह अन्य पदार्थान्तर का स्मरण न करे वह ध्यान है।

सूत्रस्थ प्रत्ययैकतानता का अभिप्राय है-एकाग्रता। विज्ञानभिक्षु ने- **''तस्यैव ब्रह्मणि प्रोक्तं ध्यानं द्वादशधारणा।''** पुराण का श्लोक उद्धृत कर **'द्वादश प्राणायाम काल पर्यन्त आत्मा एवं चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहा है।'**

उक्त सूत्र का महर्षि दयानन्द कृत अर्थ है- ''धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में, अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ, इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना। इसी का नाम **'ध्यान'** है।'' द्रष्टव्य-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना विषय:, पृ. १८३-१८४

सांख्य दर्शन ३.३० में **'रागोपहतिर्ध्यानम्' चित्त की चञ्चलता के हेतु विषयों के अभिभूत हो जाने को ध्यान कहा है।** इसी को सूत्रान्तर से पुन: **'ध्यानं निर्विषयं मन:'** (सां. द. ६.२५) जब मन चञ्चलता के हेतु विषयों के अनुराग के अभाव से केवल आत्मा के ज्ञान से युक्त रहता है, वह **ध्यान** है। अर्थात् चित्त/मन का केवल आत्म प्रत्यय होना **ध्यान** है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **'तप' ध्यान की पूर्वपीठिका अर्थात् ध्यान लगाने की स्थिति निर्मित करने हेतु किया जाने वाला प्रयत्न है। आत्मा एवं चित्त की एकाग्रता अर्थात् चित्त का बाह्य विषयों से उपरत हो आत्मस्थ होना ध्यान है।**

पं. लेखराम के ग्रन्थ संग्रह

'कुल्लियाते आर्यमुसाफिर' का प्रथम भाग प्रकाशित

दूसरे भाग का प्रकाशन कार्य प्रगति पर

पं. लेखराम आर्यमुसाफिर का ग्रन्थ संग्रह ''कुल्लियाते आर्यमुसाफिर'' जो कि एक दुर्लभ ग्रन्थ बन चुका था, परोपकारिणी सभा ने उसे पुनः प्रकाशित करने का संकल्प लिया। जिसका सुखद परिणाम यह है कि इस अमूल्य निधि का प्रथम खण्ड महर्षि दयानन्द सरस्वती के १३५ वें बलिदान दिवस के अवसर पर छपकर तैयार हो चुका है। दूसरा भाग कुछ ही समय उपरान्त सुधी आर्यजनों को उपलब्ध होगा। इस ग्रन्थ के सम्पादन के गुरुतर कार्य में आर्यसमाज के ज्ञानवृद्ध विद्वान् व परोपकारिणी सभा के सम्मानित उपप्रधान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने जो महनीय परिश्रम किया है, उससे इस ग्रन्थ की महत्ता में और अधिक वृद्धि हुई है। सभा उनका हृदय से आभार व्यक्त करती है। साथ ही जिन महानुभावों ने इस कार्य में अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया, उनका भी सभा धन्यवाद ज्ञापित करती है। सहयोगी जनों के नाम ग्रन्थ में प्रकाशित भी किये गये हैं।

अब जबकि दूसरा भाग छपने के लिये तैयार है, ऐसे में आर्यजन अपने सहयोग से इस ज्ञानयज्ञ को सम्पन्न करेंगे, ऐसी आशा है। - **मन्त्री**

साहित्य के प्रकाशन में अपना सहयोग दें

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर साहित्य प्रकाशन का निरन्तर विस्तार कर रही है। महर्षि द्वारा रचित साहित्य को प्राथमिकता से प्रकाशित किया जा रहा है। इसी क्रम में सभा निम्न पुस्तकों को प्रकाशित कर रही है-

१. **महर्षि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ**- नामक पुस्तक नये कलेवर में, सुन्दर साज-सज्जा के साथ पुनः प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रन्थ शीघ्र ही छपकर आर्यजनों के हाथों में होगा। इस ग्रन्थ की लागत लगभग ५१,०००/- (इक्यावन हजार रुपये) आयेगी।

२. आत्मकथा (महर्षि दयानन्द सरस्वती)-यद्यपि यह पुस्तक 'दयानन्द ग्रन्थमाला' में छप चुकी है, परन्तु पृथक् पुस्तक के रूप में भी यह पाठकों को उपलब्ध हो, इसलिये इसका नया संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक की छपाई का सम्पूर्ण व्यय लगभग ३१,०००/- (इकत्तीस हजार रुपये) होगा।

३. व्यवहार भानु- महर्षि द्वारा लिखित इस पुस्तक का नया आकर्षक संस्करण प्रकाशित करने का व्यय भी लगभग ३१,०००/-(इकत्तीस हजार रुपये) आयेगा।

४. डॉ. धर्मवीर जी के सम्पादकीय-परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान व परोपकारी पत्रिका के प्राणभूत सम्पादक स्मृतिशेष डॉ. धर्मवीर जी की ज्ञानप्रसूता लेखनी से लिखे गये सम्पादकीय लेख समाज की धरोहर हैं। उन्हें भी सभा अलग-अलग पुस्तकों में विषयानुसार विभाजित करके छाप रही है। जिसमें 'भाषा और शिक्षा' पर लिखे सम्पादकीय 'अंग्रेज जीत रहा है' नामक पुस्तक में छप चुके हैं। इसी क्रम में आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द एवं वैदिक सिद्धान्तों पर लिखे गये सम्पादकीयों का संकलन भी प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक का व्यय लगभग ७०,०००/-(सत्तर हजार रुपये) होगा।

जो सज्जन इन पुस्तकों का सम्पूर्ण व्यय देकर अपनी ओर से प्रकाशित कराना चाहें, उनका परिचय चित्र सहित पुस्तक में दिया जायेगा। इस कार्य में मुक्त हस्त से सभा को सहयोग करें। - **मन्त्री**

२४ फरवरी जयन्ती पर विशेष.....

हरफूल कैसे महात्मा एवं भक्त फूल सिंह बन गया

कन्हैयालाल आर्य

महापुरुषों की जीवनियाँ वे प्रकाश-स्तम्भ हैं, जो अविद्या, अन्धकार और पतन के गहरे गड्ढे में पड़े हुए मनुष्यों को दिव्य प्रकाश प्रदान कर उन्हें आगे बढ़ने और उन्नति करने का सन्देश देती हैं। जब हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण, महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे महापुरुषों के जीवन को पढ़ते हैं और उनका अनुकरण करते हुए उन जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं तो हम समझते हैं कि उन महापुरुषों का जीवन कितना दिव्य है, जिन्होंने जीवन से मृत्युपर्यन्त कोई बुरा कार्य नहीं किया, परन्तु जब हम स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा भक्त फूल सिंह जी के जीवन पर विचार करते हैं तो हमारे जीवन में आशा का संचार होने लगता है। हम विचारते हैं कि जब एक नास्तिक, शराबी, जुआरी और अनेक व्यसनों में पड़ा हुआ व्यक्ति सारे दुर्व्यसनों को छोड़कर स्वामी श्रद्धानन्द बन सकता है, कुसंग में पड़ा हुआ, रिश्वतखोर पटवारी भक्त फूल सिंह बन सकता है तो हम क्या नहीं बन सकते।

आदिकाल से ही भारत में जब-जब राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में ह्रास हुआ और सुधार या क्रान्ति की आवश्यकता हुई तब इस धरा पर किसी न किसी महान् आत्मा ने आकर समाज को नई दिशा दी। महर्षि दयानन्द का जन्म ऐसे समय में हुआ जब चहुँ ओर अज्ञान व अविद्या का साम्राज्य था, भारतीय समाज तरह-तरह की कुरीतियों एवं मिथ्या अन्ध-विश्वासों से आबद्ध था। महर्षि दयानन्द ने आकर समाज और देश के सर्वतोमुखी विकास का सतत प्रयत्न किया। भारतवासियों को स्व-राज्य, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा एवं स्वाधीनता का मूल मन्त्र दिया। महर्षि के महाप्रयाण के पश्चात् जिन महापुरुषों ने उनके द्वारा आरम्भ किये गये कार्यों को आगे बढ़ाने का सतत प्रयास किया, उनके द्वारा प्रज्वलित सत्य की ज्योति को संसार में फैलाने का यत्न किया, उन्हीं में से एक अन्यतम हरियाणा प्रान्त के ख्यातनामा स्वनामधन्य महात्मा फूल सिंह जी भी हैं।

भक्त फूल सिंह का जन्म २४ फरवरी १८८५ को हरियाणा प्रान्त के अन्तर्गत वर्तमान में सोनीपत जिले के माह (जूआँ) ग्राम में चौधरी बाबर सिंह के घर माता तारावती की कोख से हुआ। तत्कालीन रीति-रिवाज के अनुसार नामकरण संस्कार करवाकर बालक का नाम हरफूल रखा गया। बाल्यकाल से ही आपमें सेवा-भाव, निर्भयता, सरलता, मधुरभाषिता, सदाचार, सुशीलता आदि गुण विद्यमान थे।

चरित्रहीन मुख्य अध्यापक की पिटाई- हरफूल अपने गुरुजनों के सेवादि कार्य स्वेच्छा से प्रायः स्वयं ही किया करते थे। इनके सेवा-कार्य करते हुए मुख्य अध्यापक (जो कि मुसलमान था) की इनके प्रति कुदृष्टि हो गई। एक दिन सेवा के बहाने से मुख्य अध्यापक ने इनको कमरे में बन्द कर दिया। अपने बचाव का कोई उपाय न देख हरफूल कोने में रखी हुई लाठी उठाकर उस मुख्य अध्यापक पर टूट पड़े। बड़ी कठिनाई से वह अपनी जान बचाकर भागा। इसके बाद कोई दुष्ट बालक भी उसे छेड़ने का साहस नहीं करता था।

हरफूल कैसे फूलसिंह बन गया?- जब वे खरखौदा के स्कूल में विद्या-अध्ययन कर रहे थे तभी विद्यालय के कुएँ में वर्षा-ऋतु में वर्षा की अधिकता के कारण जलस्तर ऊपर आ गया। छात्रों ने देखा कि विषैला सर्प भी इस जलस्तर पर आ गया है। सभी छात्र भयभीत हो गये, परन्तु हरफूल ने साहस दिखाया और गुरुजी से कहा, ''गुरु जी! एक मोटी रस्सी से टोकरी को बन्धवा कर कुएँ में लटकवा दें और मुझे एक मजबूत डण्डा दे दें, मैं साँप को मारकर बाहर निकाल दूँगा।'' टोकरी में बैठकर हरफूल नीचे उतर गया और अपने साहस से साँप को मार डाला। उसकी इस निर्भयता को देखकर सभी अध्यापक एवं छात्र दंग रह गये। मुख्य अध्यापक ने उसको आशीर्वाद देते हुए कहा, ''बेटा हरफूल! तू वास्तव में वीर है, साहसी है।'' इस साहस के पश्चात् हरफूल को फूल सिंह नाम से पुकारा

जाने लगा।

फूल सिंह पटवारी बन गया- विद्यालय से मिडिल कक्षा उत्तीर्ण कर आपने पटवारी की परीक्षा उत्तीर्ण की। बहुत अच्छे अंक लेकर अब बालक फूल सिंह न रहकर फूल सिंह पटवारी कहे जाने लगे।

कुसंग में पड़ना- कहते हैं यौवन का काल हो, धन की कमी न हो, चारों ओर सम्मान ही सम्मान मिले तो व्यक्ति कुसंग में पड़े बिना रह नहीं सकता। निरन्तर कुसंग के कारण अनेक दुव्यर्सन आ गये। वे मद्य-मांस सेवन करने लगे और रिश्वत भी लेने लगे।

आर्यसमाज में प्रवेश- चौधरी प्रीत सिंह पटवारी (इसराना निवासी) के सत्संग से इनकी वैदिक धर्म व ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और वे सन् १९०८ में पानीपत के आर्यसमाज में नियमपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करके दृढ़ आर्यसमाजी बन गये। आर्यसमाज की सदस्यता ग्रहण करने के पश्चात् आपके मन में वैदिक धर्म के प्रसार की लगन विशेष रूप से प्रज्वलित हो गई। वे पटवारी कार्य के अत्तिरिक्त समय को आर्यसमाज के प्रचार में लगाते थे। व्याख्यान एवं भजनों द्वारा लोगों में प्रचार करते, करवाते रहते थे। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों व जीवनी का नियमपूर्वक स्वाध्याय करते थे, नित्य नियम से सन्ध्या, यज्ञ भी किया करते थे।

गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार के वार्षिकोत्सव का प्रभाव- गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सव में महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी का उपदेश चल रहा था। महात्मा जी कह रहे थे, ''मानव जीवन दुर्लभ है। जो व्यक्ति इस जीवन को विलास व प्रदर्शन में नष्ट कर देता है, उसे बाद में पछताना पड़ता है। हमें सदैव कुकर्म से दूर रहना होगा, भटके हुए लोगों को मार्ग पर लाना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है।'' इस उपदेश से उनके जीवन में आमूल-चूल परिर्वतन आ गया और उन्होंने निश्चय किया कि आज के पश्चात् पटवारी से अत्तिरिक्त समय को आर्यसमाज के प्रचार व प्रसार में लगाऊँगा। गुरुकुल के उत्सव के पश्चात् आप आर्यसमाज के दीवाने हो गये।

गुरुकुलों की स्थापना- वैदिक धर्म के प्रचारार्थ उन्होंने विचार किया कि जिस प्रकार बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्धमत को समस्त संसार में फैला दिया उसी प्रकार आर्य मिशनरी खड़े किये जायें तो सारे संसार में वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द की विचारधारा को बढ़ावा दिया जा सकेगा। उन्होंने अपना यह विचार पण्डित ब्रह्मानन्द जी (बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द) महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सम्मुख प्रकट किया। उन्होंने आपको गुरुकुल खोलने की प्रेरणा दी। ग्राम भैंसवाल कलाँ में बालकों के गुरुकुल की स्थापना की, तत्पश्चात् कन्याओं के लिए गुरुकुल खानपुर कलाँ की स्थापना की। जो आज तक यथाशक्ति आर्यसमाज व वैदिक धर्म की सेवा कर रहे हैं।

शुद्धि का कार्य- स्वामी श्रद्धानन्द जी की आज्ञानुसार आपने मुसलमानों राजाओं व मलकाने राजपूतों की शुद्धि के लिए कठोर परिश्रम किया। इस कार्य में उन्हें कई स्थानों पर उपवास भी करना पड़ा। कई स्थानों पर मुसलमानों द्वारा अपहरण की गई हिन्दू महिलाओं को मुक्त कराया। इन कारणों से क्षेत्र के सब मुसलमान आपके शत्रु हो गये। लोहारू रियासत का नवाब वैदिक धर्म के प्रचार में बाधा डालता रहता था। आपने पंजाब के उच्च अधिकारियों से मिलकर उन बाधाओं को तो दूर करा दिया, परन्तु स्वयं वे नवाब की गुण्डाशाही के शिकार हो गये और मृत्यु के मुख से बाल-बाल बचे।

हैदराबाद का सत्याग्रह- हैदराबाद रियासत के आर्य सत्याग्रह में हरियाणा प्रान्त ने जो भाग लिया वह सब प्रान्तों से बढ़कर था। उसका विशेष श्रेय भी भक्त फूल सिंह जी को जाता है। इसीलिए सत्याग्रह की समाप्ति पर महाशय कृष्ण जी ने विनोद में कहा था, ''जब भक्त फूल सिंह जैसे फरिश्ते आर्यसमाज में विद्यमान हैं तो हमको जेल में कौन बन्द रख सकता है?''

आर्यसमाज का सत्संग, रिश्वत व दुर्व्यसनों का त्याग- जब से फूल सिंह आर्यसमाज के सत्संग में जाने लगे, उनके जीवन में परिवर्तन आने लगा। उन्होंने सभी दुर्व्यसनों को त्याग दिया। अज्ञान अवस्था में की गई अपनी बुराइयों से इनको अपने मन में बड़ा क्षोभ होता था और उसके लिये बड़ा प्रायश्चित भी करते थे। इसीलिये उन्होंने अपना उपनाम भी 'फूल सिंह प्रायश्चिती' रख लिया था। ली हुई रिश्वत का भी उन्हें पश्चात्ताप होता रहता था।

अन्त में उन्होंने निश्चय किया-''जब तक मैं ली हुई रिश्वत लोगों को वापिस न करूँगा तब तक मेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी।'' यह दृढ़ निश्चय करके अपनी पैतृक सम्पत्ति को ५००० रुपये में बेचा और सारी रिश्वत जितनी भी जिससे ली थी, वापिस कर दी। पूर्वकृत दुष्कर्मों के लिए प्रायश्चित किया। अब लोगों में वे 'भक्त जी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। प्रचार-कार्य करने के लिए नौकरी छोड़ दी। हज़ारों को आर्यसमाजी बनाया तथा मांस, शराब व जुआ छुड़वाया।

पटवारी रहते समय, उन्होंने एक बार अभिमानवश एक हरिजन भाई को जूतों से ठोकर मार दी थी। ज्यों ही विवेक जागा तो उस हरिजन भाई के घर पहुँचे और उसके पैर पकड़कर क्षमायाचना की।

बूचड़खाने को बन्द करवाया- एक बार की बात है कि ग्राम समालखा में सरकार ने बूचड़खाना खोलने की घोषणा की। भक्त फूल सिंह जी के पास उस ग्राम के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति आये और कहने लगे, ''पटवारी जी, हमसे कुछ भी करवा लो, परन्तु यहाँ बूचड़खाना न खुलने दो।'' वह, अहिंसक उपायों के असफल हो जाने पर, सशस्त्र प्रयोग में भी विश्वास रखते थे। जब बूचड़खाने को बन्द करने के अहिंसक उपाय सफल नहीं हुए तो हज़ारों व्यक्तियों को सशस्त्र अपने साथ लेकर बूचड़खाने को घेर लिया। इस पर सरकार ने भयभीत होकर बूचड़खाना खोलने के आदेश वापिस ले लिए। इसी प्रकार लाहौर में १९३७-३८ में पचास लाख रुपये में पंजाब सरकार द्वारा खुलने वाले प्रसिद्ध बूचड़खाने के बन्द करवाने में भक्त जी का पूरा हाथ था। यह भक्त जी की गोभक्ति, कार्यकुशलता व परिश्रम का जीता जागता उदाहरण है।

सबके दुःख-निवारण की धुन- पूरे हरियाणा में जिस किसी दुखिया को कहीं शरण नहीं मिलती थी वह अन्त में भक्त जी महाराज की शरण में आ जाता था। वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उनकी समस्या का समाधान करते थे। ऐसे ही दुःखीजनों में ग्राम मोठ (हिसार)के चमार बन्धुओं के पास कुआँ नहीं था। हरिजनों ने अपना कुआँ बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु मुसलमानों ने खुदे हुए कुएँ को पुनः भर दिया। इस पर भक्त जी ने अनशन प्रारम्भ कर दिया, परन्तु मुसलमानों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भक्त फूलसिंह ने घोषणा कर दी कि हरिजनों के कुएँ से निकले जल से आचमन करके ही अन्न ग्रहण करेंगे। महात्मा गाँधी तक सभी ने उनका अनशन समाप्त करने के लिए बहुत प्रयत्न किये, परन्तु उन्होंने अपना अनशन नहीं तोड़ा। अन्ततः २३ दिन के उपवास के पश्चात् पंजाब के मन्त्री ने उपायुक्त को कुआँ खोदने का आदेश दिया। भक्त जी ने उस कुएँ के जल से आचमन करके ही अपना अनशन तोड़ा। आपको कुएँ पर ले जाने के लिए रथ सजाया गया। आपके रथ के पीछे हज़ारों नर-नारियाँ जयघोष कर आनन्दित हो रहे थे। कुएँ पर पहुँचकर आपने एक हरिजन भाई से उस कुएँ का पानी खिंचवाया तथा जल का पान किया। जिस युवक ने आपको मोठ गाँव में अपमानित किया था उसी ने आपको सन्तरे का रस पिलाया और आपका परमभक्त बन गया।

इस घटना के पश्चात् महात्मा गाँधी जी ने उन्हें अपने पास बुलाया और वार्तालाप में अपना अनुयायी बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहे। महात्मा गाँधी जी ने कहा था, ''आप आर्यसमाज के दायरे से निकलकर मेरे अुनसार कार्य कीजिए। आपको मैं भरपूर सहयोग करूँगा'', परन्तु आर्यसमाज के इस दीवाने को गाँधी जी का प्रलोभन झुका न पाया। भक्त जी ने कहा, ''महात्मा जी, मैं आपकी सब आज्ञायें मानने को तैयार हूँ, परन्तु मैं आर्यसमाज को नहीं छोड़ सकता। आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द मेरे रोम-रोम में समाया हुआ है।''

हरिजनों के लिए कुआँ बनने के उपरान्त महात्मा गाँधी जी ने २६/१०/१९४० को 'हरिजन सेवक' नामक पत्रिका में जो शब्द लिखे। इससे गाँधी जी का भक्त फूल सिंह के प्रति बहुत ही आदर भाव झलकता है। पत्रिका के शब्द ये हैं-

''मुझे भी वियोगी हरि जी के पत्रों से भक्त फूल सिंह जी के पवित्र अनशन व्रत का समाचार मिला। भक्त जी के हृदय में हरिजनों के प्रति किये गये अन्याय का गहरा दुःख था। हरिजनों को पीने के पानी का बड़ा कष्ट था, इसे दूर करने के लिए उन्हें अनशन व्रत करना पड़ा। यह व्रत केवल धर्मबुद्धि से तथा ईश्वर-विश्वास पर किया गया

था। व्रतकाल में अनेकों बार असफलता के बादल मण्डराये, परन्तु भक्त जी का धैर्य और ईश्वर-विश्वास प्रबल था। समय आया, वह अपने व्रत में सफल हुए। मेरे राजकोट के व्रत में विश्वास की कमी थी। प्रतिकूल स्थिति ने मेरे मन को हिला दिया, जिससे मैं व्रत में असफल रहा।''

बलिदान- १४ अगस्त १९४२ रात्रि के ९ बजे थे। भक्त जी कन्या गुरुकुल खानपुर में वट वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न बैठे थे। उस समय पाँच मुसलमान सिपाही के वेश में आ धमके। उन नराधमों ने दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हुए कहा, ''तुम अपने गुरुकुल में फौजी भगोड़ों को रखते हो, तुम सरकार से गद्दारी करते हो।'' भक्त जी ने कहा, ''यह छात्राओं का गुरुकुल है, फौजी भगोड़ों का आश्रयस्थल नहीं।'' वे नराधम अपने साथ एक बन्दूक और दो पिस्तौल लाये थे। उन नराधमों ने भक्त जी को दाढ़ी से पहचान लिया था। एक दुष्ट ने आप पर टॉर्च का प्रकाश डाला और दूसरे ने पिस्तौल के तीन फायर किये। आपके मुख से 'ओ३म्' की ध्वनि निकली और शहीद हो गये।

भक्त जी का तप, त्याग और बलिदान का जीवन देशवासियों को समाज-सुधार, धर्म-प्रचार और देश-निर्माण के कार्यों में अग्रसर होने के लिए सदैव प्रेरणा देता रहेगा।

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अत: ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

परोपकारी (पाक्षिक) का नवनिर्धारित शुल्क

(१ फरवरी २०१९ से लागू)

एक वर्ष	-	३०० रु.
पाँच वर्ष	-	१२०० रु.
आजीवन	-	३००० रु.

विशेष - विदेश के लिए पूर्व निर्धारित शुल्क ही मान्य रहेगा।

वार्षिक	-	५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक	-	९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक	-	१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन	-	५०० पाउण्ड/८०० डॉलर

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ जनवरी २०१९ तक)

१. श्री रामस्वरूप आर्य, अलवर २. श्री ओमप्रकाश लड्ढा, अजमेर ३. डॉ. ऋतु माथुर, अजमेर ४. श्रीमती कमला महाजन व श्री रजनीश महाजन, दिल्ली ५. श्री शंकर राव भालेकर, बोधन ६. श्री मुनीश गुप्ता, दिल्ली ७. श्री प्रेम नारायण शुक्ल, नई दिल्ली ८. श्री विपुल चावला, राजकोट ९. श्री दीपक श्रीवास्तव, छिन्दवाड़ा १०. श्री रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ११. श्री जयवीर आर्य, दिल्ली १२. श्री रोहित, होशियारपुर १३. श्री अग्निवेश आर्य व श्रीमती कंचन आर्य, ऋषि उद्यान, अजमेर १४. श्री मनोज आर्य, चरखी दादरी १५. श्री जगदीश प्रसाद कुन्तल, भरतपुर १६. श्री माणिकचन्द जैन, नागौर १७. श्री अनुपम प्रकाश, गुरुग्राम १८. श्री राजेश कुमार, रोहतक १९. श्री सुरेन्द्र सिंह, ऋषि उद्यान, अजमेर २०. श्री रामकिशोर, जोधपुर २१. श्री विनोद आर्य, हिसार २२. स्वामी विश्वचैतन्य, उत्तरकाशी २३. श्री रतन सिंह राणा, पुराली, उत्तरकाशी २४. श्री रामप्रकाश अग्रवाल, भीलवाड़ा २५. मै. स्वस्तिकॉम चैरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से ३१ जनवरी २०१९ तक)

१. श्रीमती सरोज गोयल, अजमेर २. श्रीमती शकुन्तला यादव, बीकानेर ३. श्री वसुमित्र, जीन्द ४. श्री सुकृत आर्य, जालन्धर ५. श्री अमोल गोविन्द भिंगोले, पुणे ६. श्री मुनीष गुप्ता, दिल्ली ७. श्री अग्निवेश आर्य व श्रीमती कंचन आर्य, ऋषि उद्यान, अजमेर ८. श्री दयाराम आर्य, अलवर ९. श्री जितेन्द्र तनेजा, अजमेर १०. श्री नाथूलाल त्रिवेदी, भीलवाड़ा ११. श्रीमती रामप्यारी त्रिवेदी, भीलवाड़ा १२. आर्यसमाज शास्त्रीनगर, भीलवाड़ा।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा का निर्माण

प्रभाकर

दो में से किसी एक को चुनना हो तो नि:सन्देह कोई भी व्यक्ति बेहतर का ही चुनाव करेगा। १०-२० में से कोई एक चुनना हो तो मानदण्ड और भी कड़े हो जाते हैं। यह संख्या जितनी बढ़ती जायेगी, निर्णय उतना ही जटिल होता जाता है। पर इस जटिलता के बाद जो सामने आता है, वह सर्वोत्कृष्ट होता है, सबसे महत्त्वपूर्ण।

कहते हैं मनुष्य अपने अन्तिम समय में बुरे काम नहीं करता और जिसने पूरे जीवन अच्छा ही किया हो, वह अपने अन्तिम दिनों में अच्छे कार्यों में भी चुनाव करने लगता है, जो काम सबसे जरूरी, वह सबसे पहले। लेकिन जो जीवन भर ही बुद्धि और विवेक से चला हो, वह जब अन्तिम समय में कुछ कहता या करता है तो जैसे समुद्र मंथन से अमृत प्राप्त हुआ हो।

मैं बात महर्षि दयानन्द सरस्वती की कर रहा हूँ। वह, जिसने अपने विवेक से सत्यासत्य को छान लिया हो, वह जिसने घोर अविद्यान्धकार में विद्या का प्रचार किया हो, जिसने लोगों को तर्क करना सिखाया हो, जिसे इस संसार ने ऋषि उपाधि से अलंकृत किया हो, जिसकी आहट से पोप और पाखण्डियों के प्रासादों की जड़ें हिल गई हों, जिसके कारण भारतीय जनमानस में अपने होने की अनुभूति हुई हो, जिसकी आवाज सुनकर क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज के साम्राज्य को उखाड़ फेंका, जिसने आर्यजाति की थाती वेद को पुनर्स्थापित किया हो, वह जो अलखनन्दा के निर्जन जंगलों में, बर्फीली नदियों में निर्भय विचरता हो- वह ऋषि सोचता है कि मेरे बाद मेरे कार्य का क्या होगा। मैंने आर्यजाति को जगा तो दिया है, पर आलस्य-प्रमाद उसे फिर आ घेरेगा। जो सोचा था वह अभी पूरा नहीं हुआ है। आर्यसमाज तो है, रहेगा, पर मैं तो सदा नहीं रहूँगा। फिर कौन होगा मेरे बाद जो मेरे कार्यों की बागडोर सम्भालेगा? कोई एक!! नहीं, मनुष्य किसी क्षण भी पतित हो सकता है, ऐसे में किसी अन्य का अंकुश अनिवार्य है जो उसे साधे रखे। तब ऋषि दयानन्द अपनी वसीयत लिखते हैं और अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करते हैं। कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि संस्था को यह अधिकार सौंपते हैं कि वह संस्था उनके बाद उनके स्थान पर कार्य करे। २३ सदस्यों को वह इस सभा में नियुक्त करते हैं और उनके सामने तीन लक्ष्य रखते हैं, जो इस लेख में आगे पढ़ेंगे।

सभा की स्थापना तो हो गई, पर इससे जो अपेक्षा थी, वह अपेक्षा पूरी नहीं हो पाई। ऐसा नहीं है कि सभासद् अयोग्य थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे दिग्गजों की योग्यता पर कौन प्रश्नचिह्न लगा सकता है? सम्पादकाचार्य पंडित पद्मसिंह शर्मा के शब्दों में कहें तो **स्वामी दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी सभा के प्रारम्भिक सभासदों की सूची को देखकर लगता है कि जैसे दयानन्द सरस्वती ने भारत का दिल ही निकाल लिया हो।** अपने समय के २३ धुरन्धरों को दयानन्द ने एक जगह इकट्ठा तो कर दिया था। अब इन सबको मिलकर दयानन्द बनना था। कारण जो भी रहे हों, परिस्थितियाँ जो भी बनी हों, पर दयानन्द के बाद सभा दयानन्द नहीं बन पाई। शायद इसीलिये प्रतिनिधि सभाओं का जन्म हुआ हो? तब से नित नई संस्थाओं के निर्माण का सिलसिला चला, तो रुका नहीं।

ऐसा भी नहीं है कि सभा ने कुछ नहीं किया। पुस्तक प्रकाशन, पाण्डुलिपि संरक्षण जैसे कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये, पर इतने मात्र से महर्षि का स्थान नहीं भर पाया। इस पूरे घटनाक्रम को स्वामी श्रद्धानन्द के योग्य सुपुत्र पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति के शब्दों में समझने की कोशिश करते हैं, जिसे इन्द्र जी ने महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित्र एवं आर्यसमाज के इतिहास में सविस्तार लिखा है :-

''ऋषि दयानन्द की दूरदर्शिनी दृष्टि अब समीप आते हुए अन्त को देख रही थी। मेरठ से चलते हुए ऋषि ने आर्यपुरुषों को जो आदेश दिया था, उसके वाक्य बतलाते हैं कि ऋषि भविष्य को देख रहे थे। आपने व्याख्यान में कहा था कि **''महाशयो! मैं कोई सदा बना नहीं रहूँगा। विधाता के न्याय-नियम में मेरा शरीर क्षण-भंगुर है।**

काल अपने कराल पेट में सबको चबा डालता है। अन्त में इस देह के कच्चे घड़े को भी उसके हाथों टूटना है। सोचो, यदि अपने पाँव खड़ा होना नहीं सीखोगे तो मेरे आँख मीचने के पीछे क्या करोगे? अभी से अपने को सुसज्जित कर लो! स्वावलम्ब के सिद्धान्त का अवलम्बन करो! अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने योग्य बन जाओ! किसी दूसरे के सहारे की आशा छोड़ अपने पर निर्भर करो!'' ऋषि के हृदय में यह चिन्ता थी कि मेरे मरने के पीछे सभाओं को संभालने वाला कौन होगा?

संभालने को बहुत-कुछ था। **सबसे प्रथम, ऋषि समझते थे कि आर्यसमाजें देश-भर में बिखरी हुई हैं। उनका एक केन्द्र-भूत संगठन नहीं है।** आपस के लड़ाई-झगड़ों को निबटाने का कोई उपाय नहीं है। दूर-दूर के प्रान्तों में स्थापित हुई समाजें एक-दूसरे से कोई सहायता नहीं ले सकतीं।

दूसरी चिन्ता ऋषि को विदेश-प्रचार की थी। उस समय तक प्रान्तिक प्रतिनिधि सभाएँ भी नहीं बनीं थीं, सार्वदेशिक सभा का तो अभी विचार ही दूर था। प्रचार का और विशेषतया विदेश-प्रचार का कार्य छोटी सभाओं की शक्ति से बाहर था। ऋषि के चित्त में यह विचार घर किये हुए था कि यदि वैदिक धर्म के योग्य प्रचारक भारत से बाहर भेजे जायें, तो उन्हें अवश्य सफलता होगी।

इसके सिवा ऋषि ने वेदभाष्य तथा अपने अन्य ग्रन्थ छपवाने के लिए १८८० में बनारस में प्रेस की स्थापना की थी। वह प्रेस अभी तक निराधार था। ऋषि को निरन्तर भ्रमण करना पड़ता था, इस कारण हिसाब में सदा गड़बड़ रहती थी। जब सामने ही यह हाल था तो पीछे के लिए क्या भरोसा हो सकता था? ऋषि के ग्रन्थ जहाँ-तहाँ छपे पड़े थे। उनका एक स्थान में संग्रह और संभालने का यत्न भी आवश्यक था।

इन सब बातों पर विचार करके **ऋषि ने एक ऐसी सभा का बनाना निश्चित किया जो इन त्रुटियों को पूरा कर सके।** उदयपुर में 'परोपकारिणी सभा' का विचार उत्पन्न हुआ और पकाया गया। वहीं वह कार्य में परिणत हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि महाराणा सज्जनसिंह के सुधार ने ऋषि के हृदय को बड़ा सन्तोष दिया। हिन्दूपति के वैदिकधर्मी बन जाने पर ऋषि को यह भान होने लगा कि अब आर्यसमाज निराधार नहीं है। महाराणा की सज्जनता और दृढ़ता को देखकर ऋषि को विश्वास हो गया कि मेरे पीछे आर्यसमाज को लौकिक सहारे की कमी नहीं रहेगी। इसमें सन्देह भी नहीं कि यदि ऋषि के पीछे उनके योग्यतम शिष्य शीघ्र न चल बसते तो परोपकारिणी सभा ऐसी निर्जीव संस्था न हो जाती। परोपकारिणी सभा का निर्माण एक वसीयतनामे के रूप में हुआ । वसीयतनामे का प्रारम्भ इस प्रकार था-

'मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेईस (२३) सज्जन आर्यपुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उसको परोपकार सुकार्य में लगाने के लिए अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकार-पत्र लिखे देता हूँ कि समय पर काम आवे।'

इस प्रकार परोपकारिणी सभा ऋषि की उत्तराधिकारिणी बनाई गई थी। २३ सभासदों में से सभापति का स्थान मेवाड़पति महाराणा सज्जनसिंह को प्रदान किया गया था। सभासदों में कई राजपूत नरेश और रईस थे। उनके अतिरिक्त देशभर के प्रसिद्ध आर्यपुरुष और ऋषि के शिष्यों के नाम सभासदों की सूची में प्राप्त होते हैं। रायबहादुर रानाडे, रायबहादुर पं. सुन्दरलाल, राजा जयकृष्णदास, लाला साईंदास, पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा आदि महानुभावों को सभा के सभासद् बनाया गया था। परोपकारिणी सभा के सभ्यों की सूची का ध्यानपूर्वक आलोचन हमें बतला सकता है कि जीवन-काल में ही ऋषि का प्रभाव कितना विस्तृत हो चुका था।

सभा के अन्य उद्देश्यों पर ध्यान देने से ऋषि के महान् उद्देश्य का परिचय मिलता है। **पहला उद्देश्य है- स्वामी जी की सम्पत्ति को वेद और वेदांग आदि के पढ़ने-पढ़ाने में और वैदिक ग्रन्थों के छपवाने में व्यय करना। शिक्षा का प्रबन्ध और पुस्तक-प्रकाशन, ये दो ही विभाग इतने हैं कि एक सभा के लिए पर्याप्त हैं। दूसरा उद्देश्य रखा गया-देश और देशान्तर में भेजने के लिए उपदेशक-मण्डलियों के प्रबन्ध में सम्पत्ति का**

व्यय करना। तीसरा उद्देश्य है-भारत के दीन और अनाथ-जनों को सहायता देना। कितने विस्तृत उद्देश्य हैं। लेख और वाणी द्वारा देश और विदेश में प्रचार परोपकारिणी सभा का पहला कर्त्तव्य है। दूसरा कर्त्तव्य है 'वैदिक शिक्षा का प्रबन्ध'। उसका अन्तिम कर्त्तव्य दीनों और अनाथों को उठाना और उनकी सहायता करना है। ऋषि ने परोपकारिणी सभा का बड़ा भारी प्रोग्राम बनाया था। **वह परोपकारिणी सभा को अपना उत्तराधिकारी और आर्यसमाज का रक्षक बनाना चाहते थे।**

वसीयतनामे के अन्तिम भाग में सभा के साधारण नियम हैं। सभा में वही रह सकेगा, जो सदाचारपूर्वक जीवन बिताए। दुराचारी को निकाल दिया जायेगा। अधिक समय तक कोई स्थान रिक्त नहीं रह सकेगा। यदि सभा में कोई झगड़ा उठे तो सभा में फैसला होने की अन्य कोई भी सूरत होने तक उसे कचहरी में नहीं ले-जाना चाहिए। यदि कोई सूरत बाकी न रहे, तो न्यायालय से निर्णय होना चाहिए। ये नियम दिखलाते हैं कि सार्वजनिक संगठनों के निर्माण में ऋषि दयानन्द सिद्धहस्त थे और सभ्यों की शक्ति को परिमित करने के लाभों को खूब समझते थे।

इन उद्देश्यों से और इन नियमों से ऋषि ने परोपकारिणी सभा का निर्माण किया और अपनी सार्वजनिक सम्पत्ति सभा को सौंप दी। अपने जीवन-काल में ही प्रेस, पुस्तक आदि सभा को दे दिये। ऋषि को सभा से बड़ी आशाएँ थीं। वह सभा द्वारा केवल अपनी सार्वजनिक सम्पत्ति को ही सुरक्षित नहीं करना चाहते थे, वह राजाओं और अन्य शिक्षित महानुभावों को इकट्ठे बिठाकर एक-दूसरे के समीप लाना चाहते थे। वह राजपूताना के अशिक्षित नरेशों को भारतहित के सार्वजनिक कार्यों में लगाना चाहते थे। **परोपकारिणी का निर्माण उस सपने का फल था जो चित्तौड़ की चोटियों पर खड़े होकर ऋषि ने देखा था।** ऋषि इस सभा द्वारा सोए हुये राजपूताना शेर को जगाना चाहते थे। वह आर्य-जाति द्वारा मनुष्यजाति के धार्मिक और सामाजिक उद्धार का नेतृत्व आर्य नरेशों के हाथ में देना चाहते थे।

यह दूसरा प्रश्न है कि परोपकारिणी सभा को कहाँ तक सफलता हुई। पूरी सफलता न होने के कई कारण हुए। पहला कारण तो ऋषि का शीघ्र ही स्वर्गवास था। दूसरा कारण ऋषि के थोड़े ही समय पीछे उदयपुर-नरेश का देहान्त था। तीसरा कारण यह था कि आर्यसमाज का प्रतिनिधियों द्वारा संगठन बहुत शीघ्र ही बन गया और आर्य-प्रजा की सम्पूर्ण शक्तियाँ उधर ही लग गईं। अनेक प्रान्तों में, सैकड़ों मीलों की दूरी पर बैठे हुए रईस और समृद्ध महानुभावों के कार्य पर कड़ा निरीक्षण करने की जितनी आवश्यकता थी, आर्य-पुरुष उसे पूरा न कर सके। वे अपनी प्रतिनिधि-सभाओं और धीरे-धीरे सार्वदेशिक सभा में इतने लीन हो गए कि परोपकारिणी की सुध न ली। परोपकारिणी भी अनुकूल अवसर जानकर स्वप्नावस्था में पड़ी-पड़ी जीवन के दिन काटने लगी।'' ***(इन्द्र जी लिखित महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र से)***

परोपकारिणी सभा का अधिवेशन

''१८८३ ई. के आरम्भ में ऋषि दयानन्द मेवाड़ में धर्मोपदेश कर रहे थे। वर्तमान का अतिक्रमण करनेवाली सूक्ष्म दृष्टि से अपने जीवन-नाटक का अन्तिम अंक समाप्तप्राय देखकर ऋषि ने उस समय परोपकारिणी सभा का निर्माण किया था। ऋषि दयानन्द का अन्तकाल समय से पूर्व ही आ गया, इस कारण समाज का जैसा संगठन वह बनाना चाहते थे, वैसा न बन सका। लेखक का विश्वास है कि यदि आर्यप्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक सभा बन चुकीं होतीं तो परोपकारिणी सभा की स्थापना न होती, परन्तु जैसी परिस्थिति थी, उसे देखकर अपने कार्य को जारी रखने और ग्रन्थों की रक्षा करने के लिए ऋषि ने परोपकारिणी सभा को ही उचित साधन समझा। सभा में सभी ऐसे प्रान्तों के प्रतिनिधि रखने का उद्योग किया गया था, जिनमें आर्यसमाज के पाँव जम चुके थे।

परोपकारिणी जिस उद्देश्य से स्थापित हुई थी, वह पूर्ण हुआ या नहीं, यह इतिहास के अगले प्रसंग में ज्ञात हो जायेगा, परन्तु इतना हम प्रारम्भ में ही कह देना चाहते हैं कि परोपकारिणी में आर्यसमाज का रईस-मण्डल शामिल था, और यही कारण था कि आर्यसमाज के प्रजासत्तात्मक संगठन के साथ परोपकारिणी ने कभी ठीक-ठीक मेल नहीं खाया।

ऋषि की मृत्यु से दो मास पीछे अजमेर में परोपकारिणी

सभा का पहला अधिवेशन हुआ। २८ दिसम्बर को दोपहर के दो बजे मेयो कॉलेज में बनी हुई मेवाड़ दरबार की कोठी में ऋषि की वसीयत के ट्रस्टी इकट्ठे हुए। उपस्थिति पर्याप्त थी। कई सभासद् प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थित थे। सभासदों ने ऋषि की वसीयत के अनुसार जिम्मेदारी का बोझ सिर पर लेना स्वीकार किया। मेरठ के रा. सा. रामसरन दास के स्थान पर महाराज श्री प्रतापसिंह सी.आई.ई. को नियुक्त किया गया। इसी प्रकार कुछ और पूर्तियाँ की गयीं। वैदिक प्रेस के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि उसे यथासम्भव शीघ्र ही प्रयाग से अजमेर में लाया जाये, प्रेस के प्रबन्ध के लिए रायबहादुर रानाडे, ठाकुर साहब मसूदा, रा. ब. सुन्दरलाल, कविराज श्यामलदास जी, पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या तथा प्रधान आर्यसमाज अजमेर की उपसमिति बनाई गई। वेदभाष्य की छपाई की देख-रेख के लिए पं. भीमसेन और पं. ज्वालादत्त को वेतन पर रखा गया।

इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव बड़े महत्त्व का हुआ। पं. महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रस्ताव किया और रायबहादुर सुन्दरलाल ने अनुमोदन किया कि आर्यसमाजों को आपस में और परोपकारिणी के साथ अधिक समीप लाने के उद्देश्य से एक प्रतिनिधि सभा का संगठन होना चाहिए। जब तक यह कमेटी न बने तब तक परोपकारिणी के सभासद् ही जो आर्यसमाज के भी सदस्य हैं, प्रतिनिधि मान लिये जाएँ। जब प्रतिनिधि सभा बन जाये तब कुछ जगह जो परोपकारिणी में खाली हों, ऐसे ढंग पर भरी जाएँ कि परोपकारिणी में कम-से-कम आधे प्रतिनिधि सभा के मेम्बर मुकर्रर हों। प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

पं. गोविन्द महादेव रानाडे ने एक और भी बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया, वह भी सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव यह था कि स्वामी दयानन्द जी की यादगार में एक दयानन्द आश्रम बनाया जाये, जिसमें कुतुबखाना, एंग्लो वैदिक कॉलेज, किताबों की दुकान, अनाथालय, अद्भुतालय, प्रेस और लेक्चर-रूम सम्मिलित हों। इन पर इस शुभ कार्य के लिए २४ सहस्र रुपया उसी समय लिखा गया।

१८८५ ई. में एक अधिवेशन करके परोपकारिणी सभा लम्बी तानकर सो गई। इधर समाचार पत्रों में सभा के आलस्य की चर्चा आरम्भ हो गई। वैदिक प्रेस का प्रबन्ध असन्तोषजनक था। उसकी शिकायतों के भी दफ्तर तैयार हो रहे थे। चारों ओर से प्रेरित किये जाकर १८८७ ई. के अन्त में मन्त्री जी ने परोपकारिणी सभा का अधिवेशन अजमेर में बुलाया। उस समय तक प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओं ने जोर नहीं पकड़ा था। इस कारण आर्यपुरुषों का ध्यान परोपकारिणी सभा पर केन्द्रित रहता था। यह भी खबर थी कि परोपकारिणी सभा एक वैदिक आश्रम की स्थापना करने वाली है। यही कारण थे कि जिनसे अधिवेशन पर भारत भर की मुख्य-मुख्य समाजों के प्रतिनिधि अजमेर में उपस्थित हो गए थे। अधिवेशन २८, २९ दिसम्बर को था, परन्तु आर्यपुरुषों की भीड़ २५ तारीख से ही आरम्भ हो गई थी। पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध की आर्य प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन भी उन्हीं दिनों अजमेर में रखा गया था। इस कारण और भी अधिक रौनक हो गई।

परोपकारिणी सभा का अधिवेशन दो दिन हुआ। ९ सभासद् उपस्थित थे। वैदिक-आश्रम-सम्बन्धी प्रस्ताव पर देर तक बहस होती रही। अन्त में **शाहपुराधीश श्रीयुत नाहरसिंह वर्मा की ओर से बाबा जीवनराम साहब ने आनासागर के किनारे पर विद्यमान उद्यान आश्रम के लिए भेंट किया।** सभा ने भेंट को सहर्ष स्वीकार कर लिया। दूसरे रोज प्रात:काल ९ बजे आश्रम का बुनियादी पत्थर रखने की विधि का समारोह था। प्रात:काल ही बाहर से आए हुए और अजमेर के सज्जन इकट्ठे होकर भजन गाते हुए आनासागर की ओर रवाना हुए। उद्यान में पहुँचकर पहले ईश्वरभक्ति के भजन हुए, **फिर पं. गुरुदत्त जी तथा अन्य कई विद्वानों ने मिलकर वेदपाठ किया।** परोपकारिणी सभा की ओर से पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या द्वारा आश्रम की आधारशिला के साथ एक बोतल में वेद-भाष्य के कुछ अंक भी रखे गए। उसी स्थान पर ऋषि की अस्थियों की स्थापना की गई। विधि समाप्त हो जाने पर **हिसार के वकील लाला लाजपतराय जी का एक प्रभावशाली भाषण हुआ।** ऋषि के शिष्य रतलाम के दीवान **पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा ने एक छोटे से भाषण में ऋषि का गुणानुवाद किया।** इस प्रकार उत्साह

और जीवन के चिह्नों के साथ आश्रम की स्थापना की विधि समाप्त हुई।

दूसरे दिन के अधिवेशन में वैदिक प्रेस की दशा पर विचार हुआ। आर्यपुरुषों को प्रेस से जो-जो शिकायतें थीं, वे पेश की गईं। उनका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया गया। अधिकांश त्रुटियों को स्वीकार करना पड़ा। यह समझकर कि शायद प्रबन्ध के दूसरे हाथों में जाने से सुधार हो जाये, प्रेस की देखरेख का काम आर्यप्रतिनिधि सभा मेरठ के सुपुर्द किया गया। प्रतिनिधि सभा के मन्त्री लाला बिहारी लाल ने इस बोझ को सहर्ष स्वीकार किया।''

(इन्द्र जी लिखित 'आर्यसमाज का इतिहास' से)

यह परोपकारिणी सभा की प्रारम्भिक स्थिति है। पर समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं और आज सभा फिर से आर्यसमाज की आशाओं का केन्द्र बनकर उभरी है। वर्तमान में इस सभा की जो प्रतिष्ठा है उसे बनाने में नि:सन्देह महाराणा सज्जनसिंह प्रभृति सभी सभ्यों का परिश्रम और योगदान है। पर जो दयानन्द के लिये हँसे, दयानन्द के लिये रोये, दयानन्द के लिये ही पढ़े-लिखे, जिसके जीवन के हर क्षण का ध्येय केवल दयानन्द और परोपकारिणी सभा हो, मैं ऐसे केवल एक व्यक्ति को जानता हूँ, डॉ. धर्मवीर को। ऋषि उद्यान के पत्थरों में उगे पौधे इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

कौन निष्ठुर होगा जो सामर्थ्य होते हुए भी अपने बच्चों को अभाव में जीता हुआ देखता रहे? अपने घर की टूटी छत किसे अच्छी लगती है? ७० वर्ष की आयु में २० किलो भार लेकर रेल के सामान्य डब्बे में कौन यात्रा करना चाहता है? आपने नन्हें नाती को देखकर किसके हृदय में ममता नहीं जगती, पर दयानन्द के सम्मुख धर्मवीर को ये सब हल्के दिखाई पड़ते थे। वह घटना मेरे चित्तपटल पर अब भी अंकित है, जब उनके फोन की स्क्रीन पर दयानन्द के चित्र की बजाय उनके नाती का चित्र आ गया। वे परेशान हो गये और तब तक रहे जब तक दोबारा दयानन्द का चित्र वहाँ नहीं आ गया।

परोपकारिणी सभा इस वर्ष २७ फरवरी को अपना स्थापना दिवस मना रही है। इस अवसर पर पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति की उपयुर्क्त पंक्तियाँ हमें अतीत में झाँकने का अवसर देंगी और साथ ही नयी ऊर्जा के साथ कार्य करने का उत्साह और प्रेरणा भी।

ऋषि उद्यान, अजमेर।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. २७ फरवरी, २०१९ – **परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस**

२. ०१ से ०३ मार्च, २०१९ – **वार्षिकोत्सव जमानी आश्रम, इटारसी,** सम्पर्क– ०७५०९७०६८२८

३. १९ से २६ मई, २०१९ – **आर्यवीर दल शिविर**

४. ०२ से ०९ जून, २०१९ – **आर्य वीराङ्गना शिविर**

५. १६ से २३ जून, २०१९– **योग-साधना शिविर**

६. १३ से २० अक्टूबर, २०१९– **योग-साधना शिविर**

७. ०१, ०२, ०३ नवम्बर २०१९– **ऋषि मेला**

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र– ०९४६०४२११८३

प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ है।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की विशेष व्यवस्था है।

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक की शास्त्री, आचार्य परीक्षा की तैयारी भी इस पाठ्यक्रम के माध्यम से हो जाती है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य विद्यादेव

आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान

पुष्कर रोड, अजमेर।

९८७९५८७७५६

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

(स. प्र. ३)

आर्यजगत् के समाचार

१. प्रवेश सूचना- स्वामी कृष्णानन्द वैदिक गुरुकुल राड़धना, सरधना, मेरठ गुरुकुल में नवीन प्रवेश १५ अप्रैल से १५ जुलाई २०१९ तक होंगे। इस गुरुकुल में प्राचीन पद्धति से आश्रम की दिनचर्या के साथ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी और महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक के पाठ्यक्रम के अनुसार आधुनिक विषयों का भी ज्ञान दिया जाता है। इनकी परीक्षाओं की मान्यता सारे देश में है। गुरुकुल का खानपान सादा है। आवास-शिक्षादि की नि:शुल्क व्यवस्था है। यदि किसी परिवार में कोई बच्चा अनाथ हो गया है, माता-पिता आदि किसी की छाया उस पर नहीं है तो ऐसे अनाथ बालक की पूर्ण व्यवस्था आश्रम की ओर से होगी।

सम्पर्क- ९९२७२७८४४२, ९९९१३६४८५१

२. धर्म प्रचार शिविर- प्रयागराज कुम्भ मेला-२०१९ जो १३ जनवरी से ४ मार्च २०१९ तक चलेगा, उसमें दयानन्द मठ दीनानगर की ओर से सैक्टर-१९ औरलघाट प्रयागराज में बृहद् वैदिक धर्म प्रचार शिविर लगाया जा रहा है। जिसमें चारों वेदों के मन्त्रों के द्वारा यज्ञ होगा तथा विद्वानों के द्वारा भजन-प्रवचन आदि होगा। अत: आपसे निवेदन है कि आप सपरिवार विद्वानों के प्रवचन सुनकर धर्म लाभ उठायें।

सम्पर्क- ९९१९०२००१७, ८८५३१२३२६५

३. शिविर का आयोजन- महर्षि दयानन्द स्मारक, कर्णवास जनपद-बुलन्दशहर में दिनांक २७/०३/२०१९ से ०२/०४/२०१९ तक साधना एवं स्वाध्याय शिविर का आयोजन किया जा रहा है। इच्छुक सज्जन ५००/- रुपया शिविर शुल्क खाता संख्या - १११०५७०७३२८ आई. एफ. एस. सी. कोड- एसबीआईएन०००२३३८ स्टेट बैंक डिबाई, बुलन्दशहर में जमा कराकर स्थान सुरक्षित कर लें। शिविर में प्रशिक्षण स्वामी केवलानन्द जी वानप्रस्थ आश्रम, हरिद्वार व उनके सहयोगी महात्मा अमृतमुनि, महात्मा प्रेममुनि, हरिद्वार, योग आचार्य गिरिधारी लाल आर्य, अलीगढ़ द्वारा दिया जायेगा।

सम्पर्क-९४५२४१८१२२, ९७५८७६३८७८

४. सत्यार्थप्रकाश प्रतियोगिता का आयोजन- आर्यवीर दल उ.प्र. द्वारा आर्य जगत् के तपोनिष्ठ विद्वान् गुरुकुल कालवा के संस्थापक आचार्य बलदेव जी की स्मृति में दूसरी बार अखिल भारतीय सत्यार्थप्रकाश प्रतियोगिता का आयोजन १० जनवरी २०१९ को किया गया। यह परीक्षा देशभर के १०८ जनपदों में १८२ केन्द्रों पर अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुई। इस प्रतियोगिता में प्रतिभागियों को प्रोत्साहन हेतु मोटर-साईकिल जैसे बड़े पुरस्कारों सहित १००१ पुरस्कार दिया जाना निश्चित किया गया। पुरस्कार वितरण कार्यक्रम १० मार्च २०१९ को अलीगढ़ स्थित सिद्धि विनायक फार्म हाउस, नांदापुल खैर रोड पर ५१ कुण्डीय स्वयं कल्याण यज्ञ के साथ आयोजित किया जायेगा।

५. स्मृति दिवस मनाया- आचार्य बलदेव जी स्मृति दिवस पर आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के तत्त्वावधान में प्रान्तीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में यज्ञ के ब्रह्मा स्वामी धर्मदेव रहे। महासम्मेलन की अध्यक्षता हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत ने की। मुख्य अतिथि हरियाणा प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री सत्यदेव नारायण आर्य तथा विशिष्ट अतिथि महाशय धर्मपाल आर्य एम.डी.एच. दिल्ली, श्री मनीष ग्रोवर सहकारिता मन्त्री हरियाणा सरकार, श्रीमती कृष्णा गहलावत पूर्वमन्त्री, श्री राजेश जैन चेयरमैन एल.पी.एस. बोसार्ड रहे। मंच का संचालन सभामन्त्री श्री उमेद शर्मा ने किया।

शोक समाचार

६. निष्ठावान् आर्यसमाजी **श्री देवदत्त जी तनेजा** का ८९ वर्ष की अवस्था में दिनांक २५ जनवरी २०१९ को देहावसान हो गया। तनेजा जी दयानन्द बाल सदन, अजमेर में भी सचिव के रूप में अपनी सेवाएँ दे चुके थे। नगर आर्यसमाज अजमेर के वरिष्ठ सदस्य थे तथा आर्यसमाज के सत्संग में नियमित रूप से उपस्थित रहते थे और बहुत सुन्दर भजन गाते थे। परोपकारिणी सभा की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

७. परोपकारिणी सभा के अनन्य सहयोगी जयपुर निवासी **श्री वृद्धिचन्द्र जी** का गत दिनों १९ नवम्बर २०१९ को निधन हो गया। वह परोपकारिणी सभा के अतिरिक्त आप अन्य आर्य संस्थाओं को भी नियमित सहयोग करते थे। ईश्वरीय व्यवस्था को स्वीकार करते हुए सभा श्री वृद्धिचन्द्र जी के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

८. आर्यसमाज शृंगार नगर, लखनऊ की पूर्व प्रधान ८९ वर्षीया **श्रीमती कृष्णा बांगिया** का १९ जनवरी २०१९ को निधन हो गया। आचार्य सन्तोष कुमार वेदालंकार एवं आचार्य रूपचन्द्र दीपक द्वारा २० जनवरी को अन्त्येष्टि-संस्कार तथा २२ जनवरी को गृहशुद्धि-यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न कराया गया। परोपकारिणी सभा की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।